देव-सुकवि-सुधा

(ओरछाधिपति हिज़ हाइनेस सवाई महेंद्र महाराजा श्रीवीरसिंहदेव-प्रदत्त सर्वप्रथम देव-पुरस्कार की स्मृति में, महाराज के ही शुभ नाम से, यह पुस्तकमाला देव-पुरस्कार-विजेता द्वारा निकाली जा रही है।)

देव-सुधा

[महाकवि देव से चारु, चयन]

संग्रहकार और टीकाकार

पंडित गणेशविहारी मिश्र

रावराजा रा० ब० श्यामविहारी मिश्र एम्० ए०

रा० ब० शुकदेवविहारी मिश्र बी० ए०

प्रकाशक

देव-सुकवि-सुधा-कार्यालय

कवि-कुटीर, लखनऊ

सजिल्द १॥)] सं० १९९२ [सादी १)

प्रकाशक

श्रीदुलारेलाल भार्गव

मंत्री देव-सुकवि-सुधा-कार्यालय

कवि-कुटीर, लखनऊ

मुद्रक

श्रीदुलारेलाल भार्गव

अध्यक्ष गंगा-फ़ाइनआर्ट-प्रेस

लखनऊ

निवेदन

[मेजर विंध्येश्वरीप्रसाद पांडेय बी० ए०, एल्-एल्० बी०, चीफ़ मिनिस्टर ओरछा-राज्य]

ब्रजभाषा के अनमोल पारखी, देवजी के ही शब्दों में "लाखन खरचि रचि आखर खरीदने" वाले, काव्य-मर्मज्ञ, भूपाल-श्रेष्ठ श्रीमान् एच्० एच्० श्रीसवाई महेंद्र महाराजा श्रीवीर-सिंहदेव ओरछा-नरेश ने गत वर्ष घोषित किया था कि वह प्रतिवर्ष हिंदी के सर्वोत्कृष्ट काव्य-ग्रंथ के रचयिता को २०००) का पुरस्कार प्रदान किया करेंगे। वसंतोत्सव के समय टीकमगढ़ में जो वार्षिक कवि-सम्मेलन होता है, उसमें इसी उदार आज्ञा के अनुसार श्रीमान् ने इस वर्ष यह २०००) का पुरस्कार 'दुलारे-दोहावली'-ग्रंथ पर पंडित दुलारेलाल भार्गव को प्रदान किया। पुरस्कार पाते समय दुलारेलालजी ने कवि-कुल-गुरु श्रीकालि-दासवाली "यशसे विजिगीषूणाम्" उक्ति के अनुसार न केवल यह धन श्रीमान् के शुभ नाम पर हिंदी-हित में लगा दिया, वरन् इसी मूल्य की पुस्तकें भी अपने पास से देकर एक पुस्तकमाला प्रकाशित करने का विचार उसी समय श्रीमान् ओरछा-नरेश की सेवा में प्रकट किया, जिसे श्रीमान् ने भी सहर्ष स्वीकार किया। इस संबंध में जो वक्तव्य श्रीदुलारेलालजी ने पुरस्कार

प्राप्त करने पर टीकमगढ़ में दिया था, वह पुस्तक के अंत में दिया गया है। उसी के अनुसार, प्रायः एक ही मास के भीतर, 'देव-सुकवि-सुधा' - नामक ग्रंथमाला का यह पहला पुष्प ('देव - सुधा') हिंदी-कोविदों के लाभार्थ प्रकाशित किया जाता है। माला का नाम 'देव-सुकवि-सुधा' है ही, सो पहले इसमें 'देव-सुधा' नाम के ग्रंथ का ही गूँथा जाना उचित ही हुआ। यह ग्रंथ लखनऊ के अखिलभारतवर्षीय कवि-सम्मेलन के शुभ अवसर पर—१० मार्च, १९३५ को—श्रीमान् के कर-कमलों में अर्पित किया गया।

प्राक्कथन

महाकवि देवदत्त उपनाम देव-कवि दुसरिहा द्विवेदी कान्यकुब्ज ब्राह्मण पंसारीटोला बलालपुरा, शहर इटावा के निवासी थे। भाव-विलास में आपने अपना जन्म-काल संवत् १७३० लिखा, तथा सुख-सागर-तरंग ग्रंथ पिहानी के अकबरअलीख़ाँ को समर्पित किया। उनका अादिम समय संवत् १८२४ था। अतएव इनका जीवन-काल ६४ वर्ष से अधिक बैठता है। आप हिंदी के परमोत्कृष्ट कवियों में थे। गोस्वामी तुलसीदास तथा सूरदास के पीछे उत्तमता में हम इन्हीं का नंबर समझते हैं। आचार्यता, भाषा-सौष्ठव तथा भाव-गांभीर्य आपके प्रधान गुण हैं। टीका का भाग पढ़ने से भाव-गांभीर्य प्रकट होगा। देव के पूरे भावखोज निकालना कठिन भी है। आपके ७२ या ५२ ग्रंथ कहे जाते हैं। उनमें से भावविलास (सं० १७४६), अष्टयाम, भवानी-विलास, कुशल-विलास, प्रेम-चंद्रिका, जाति-विलास, रस-विलास (सं० १७८३), शब्द-रसायन, सुख-सागर-तरंग (सं० १८२४), नीति-शतक, वैराग्य-शतक, सुजान-चरित्र, राग-रत्नाकर, देव-शतक, सुंदरी-सिंदूर, शिवाष्टक, प्रेम-तरंग, देव-माया-प्रपंच-नाटक, देव-चरित्र, वृक्ष-विलास, पावस-विलास, प्रेम-दर्शन, रसानंद-लहरी, प्रेम-दीपिका, सुमिल-विनोद, राधिका-विलास, नख-शिख और प्रेम-दर्शन ज्ञात हो चुके हैं। रस-विलास और प्रेम-चंद्रिका में परमोच्च साहित्य-गौरव है, शब्द-रसायन में आचार्यता, भाव-विलास में रीति-कथन, वृक्ष-विलास में अन्योक्ति, नाटक में (अर्द्ध-नाटक के रूप में) धर्म-विवेचन, देव-चरित्र में कृष्ण-कथा तथा अन्य ग्रंथों में अन्य अनेकानेक विषय।

देवजी पहुँचे अनेक ऊँचे-ऊँचे स्थानों में, किंतु जमकर बहुत दिन कहीं भी नहीं रहे। चाहे आश्रयदाता की खोज में, या किसी अन्य कारण से आप सारे भारतवर्ष में घूमते फिरे। इसके फल-स्वरूप आपने जातियों और देशों की वधुओं का सच्चा वर्णन रस-विलास में बहुत अच्छा किया है। राग-रत्नाकर में राग-रागिनियों का उत्कृष्ट कथन है। देवजी की बहुज्ञता बहुत बढ़ी-चढ़ी थी। इनकी रचना के मुख्य गुणों में भाषा-सौंदर्य, उत्कृष्ट छंदों का प्राचुर्य, प्राकृतिक दृश्यों का विवरण, वैभव, आचार्यत्व, ऊँचे ख़याल, हृदय पर चोट करनेवाले उच्च प्रेम के कथन, उपमा, रूपकादि का अच्छा अवलोकन, चोखों का निकालना आदि कहे जा सकते हैं। आपने अधिकतर सवैया तथा घनाक्षरियों में रचना की। कुछ श्रेष्ठ दोहे भी लिखे।

इस ग्रंथ में हमने इनके मुद्रित तथा अमुद्रित बहुतेरे ग्रंथों से छाँटकर २७२ परमोत्कृष्ट छंद रक्खे हैं। अनेकानेक अन्य छंद भी ऐसे ही हैं, किंतु आजकल जनता थोड़े में अधिक जानने की इच्छा रखती है, इसी से थोड़े ही छंदों में हमने देव का महत्त्व दिखलाने का प्रयत्न किया है। पहले हमारा विचार था कि बिहारी-सतसई की भाँति इनके भी ७०० छंद चुनें, किंतु पीछे उपर्युक्त विचार से चुने हुए छंदों की संख्या कम कर दी गई है। ऐसे ही छोटे-छोटे संग्रह-ग्रंथ इतर महाकवियों के भी लिखने का विचार है। उनमें पचास या साठ से दो-ढाई सौ तक छंद रहा करेंगे। इस ग्रंथ में हमने प्रार्थना, सिद्धांत, विविध वर्णन, सीता-सौभाग्य, प्रकृति-निरीक्षण, समीर, चंद्र-चंद्रिका, विनोद, पावस, हिंडोरा, फाग, रास, राग, उपमादि, शाब्दिक सामंजस्य, संक्षिप्त गुण, रूप, चित्र, दर्शन-मिलन, प्रेम, मर्म, विरह, खंडिता, उपालंभ, मान, सखी की शिक्षा, काव्यांग, उद्धव और देश तथा जाति के विषयों पर छंद चुने हैं। अश्लील विषयों के कई परमोत्कृष्ट छंद भी निकाल डाले गए हैं। देव-कृत

छंदों में विविध भाव निकलते हैं, सो विषय-विभाजन में मतभेद हो सकता है, अर्थात् वे ही छंद अन्य विभागों में भी रक्खे जा सकते हैं, अथच नवीन विभाग बन सकते हैं, जैसे स्वाभाविकता, रस, भाव, अलंकार आदि-आदि अनेक विषयों पर। आशा है, ऐसे ही कई संग्रह निकल चुकने पर पाठक महाशय सुगमता-पूर्वक तुलनात्मक समालोचना में सफल हो सकेंगे। देवजी के छंदों पर टीका का प्रारंभ हमने सं० १९८१ में किया था, किंतु कई कारणों से यह काम अब तक पड़ा रहा था। आदि में भूमिका की रचना देव-कृत छंदों से ही की गई है। उसमें आपके साहित्य-संबंधी विचार मिलेंगे। कुछ महाशय देव की रचना में अर्थ-काठिन्य का दोष लगाते थे, अथच एक समालोचक का कथन है कि इनमें असमर्थ अर्थ-पूर्ण शब्द-प्राचुर्य भी है। किसी के हज़ारों छंदों में से दो-चार में खींच-तान द्वारा कोई दोष स्थापित करके उसे व्यापक शब्दों में कह देना सत्य की अवहेलना करनी है। देव की रचना में अर्थ-गांभीर्य अवश्य है। प्रति शब्द पर विचार करने से छंदों में मनोहर अर्थ निकलते हैं। कुछ महाशय उन्हें समझने का सामर्थ्य ही न रखकर अपने अल्प ज्ञान का दोष कवि पर रखने लगते हैं। "चितवत लोचन अंगुलि लाए; प्रकट युगल शशि तिनके भाए।" कुछ लोग समयाभाव या शीघ्रता की आदत से प्रति शब्द पर विचार न करके पूर्ण अर्थ नहीं समझ पाते, और अपनी उस असमर्थता का दोष कवि पर लादते हैं। इन्हीं कारणों से छंदों के कठिन भागों के हमने इस बार अर्थ लिख दिए हैं, जिसमें उपर्युक्त प्रकार की गड़बड़ न पड़े। साधारण पाठक भी प्रायः टीका-सहित पाठ चाहते हैं। यद्यपि हम लोग हिंदी की सेवा किया ही करते हैं, तथापि हमारा क्षेत्र टीका न होकर समालोचना है। टीका हमने इतिहास के कारण केवल भूषण पर लिखी थी। इस बार देव के विषय में यही करना पड़ा, सो भी विवश होकर।

देव-कृत दोहों के अतिरिक्त प्रायः ३५०० छंद हैं, जिनमें हज़ार-आठ सौ तक उत्कृष्ट निकलेंगे। प्रायः १४०० छंद छाँटे थे, जिनमें से ये २७२ यहाँ दिए जाते हैं। २५० छंद छाँटने बैठे थे, किंतु २२ और छँट गए, जिनको अलग करना ठीक न जँचा, सो वे भी रख दिए गए। प्रायः २०० और छंद भी इसी उत्तमता के निकलेंगे, ऐसा विचार है। शेष तीन-चार सौ छंद भी उत्कृष्ट हैं, किंतु इन ५०० के बराबर नहीं। हमारी समझ में विहारी के प्रायः ढाई सौ छंद श्रेष्ठ होंगे, और इतरों के भी भले-बुरे निकलेंगे। कवि-सुधा निकालने का हमारा मुख्य विचार यह है कि सुकवियों की उत्कृष्ट रचनाएँ एकत्र हो जायँ, तथा तुलनात्मिका समालोचना की सुविधा हो जाय। अभी लोग किसी कवि के अच्छे और दूसरे के साधारण या बुरे छंद लेकर कभी-कभी तुलना करने बैठते हैं, जिससे न्याय नहीं होता। ये संग्रह निकल जाने से श्रेष्ठ छंद एकत्र हो जायँगे, और यह कठिनता कम हो जायगी।

लखनऊ
सं० १९९२ } मिश्रबंधु

भूमिका

यह भूमिका महाकवि देव-कृत स्फुट दोहों को एकत्र करके बनाई गई है। पाठक महाशय इन कविवर के ऐसे विचार इन्हीं के शब्दों में सुनें—

(१)

प्रार्थना

इंदु-कलित सुंदर बदन मनमथ-मथन-बिनोद।
गोबरधन-गिरि जासु बन, बिहरत गोपति गोद*॥ १ ॥
श्रीराधे ब्रजदेवि जै सुंदर नंदकिसोर।
दुरित हरौ चित के चितै नेसुक दै दृग-कोर॥ २ ॥
राधा कृष्ण किशोर युग पद बंदौं जग-बंद।
मूरति रति सिंगार की सुद्ध सच्चिदानंद॥ ३ ॥
श्रीराधा हरि-प्रेम-बस सरस सिंगार उदार।
छ रितु बारहौ मास गुन बृंदा-बिपिन-बिहार॥ ४ ॥
हरिजसरस की रसिकता सकल रसायनि-सार।
जहाँ न करत कदर्थना यह अनर्थ संसार॥ ५ ॥

---

* जिसका वन गोवर्द्धन-गिरि है, और जो गउओं के स्वामी नंद गोप की गोद में विहार करता है।

दारिद उदर बिदारं जसु आदर उदित उदार।
जग अमंद आनंद गुन मंद कियो मंदार* ॥ ६ ॥
धर्‍यो निरंतर सात दिन गिरिवर गिरिधरलाल।
उपजै हिय मैं धकधकी, थकी न भुज केहु काल ॥ ७ ॥
श्रीगुरुदेव कृपाल की कृपा सुबुद्धि समीप।
तिमिर मिटै, प्रगटै हृदय-मंदिर अनुभव-दीप ॥ ८ ॥
एक भक्ति गोपीन की प्रेम-भाव संसार।
दूजी भक्ति बिरक्त जन दास्यता† भाव विचार ॥ ९ ॥

(२)

साहित्य

ऊँच-नीच तन कर्म-बस चल्यौ जात संसार।
रहत भव्य भगवंत जसु नव्य काव्य सुख-सार ॥ १० ॥
रहत न घर वर वाम धन तरुवर सरवर कूप।
जस-सरीर जग में अमर भव्य काव्य-रस-रूप ॥ ११ ॥
अर्थ सब्द सुंदर सरस प्रगट भाव रस प्रीति।
उत्तम काव्य सु सब गुनन आगर नागर रीति ॥ १२ ॥
अनुप्रास अरु जमक युत‡ अदभुत बारह भाँति।
इन्है अछत नीकी लगै अलंकार की पाँति ॥ १३ ॥

---

* गुण से कल्पवृक्ष मंद किया।

† दास-भाव। सखी-भाव तथा दास-भाव की भक्ति का कथन इस दोहे में आया है।

‡ जो हैं। देव का मत है कि अनुप्रास और यमक-युक्त होने से अलंकार अच्छे लगते हैं।

ऊपर रूप अनूप अति; अंतर अंतक* तूल।
इंद्रायन† के फल यथा करियारी‡ के फूल ॥ १४ ॥
ऊपर रूखो अतिहि फल, अंतर अति रस राखि।
सुरुचि जीभ जौहर करत कौहर§ फल मुख चाखि ॥१५॥
कहत लहत उलहत हियो, सुनत चुनत चित प्रीति।
सब्द अर्थ भाषा सुरस बसत काव्य दस रीति ॥ १६ ॥
कबिता-कामिनि सुखद पद सुबरन सरस सुजाति।
अलंकार पहिरे अधिक अद्भुत रूप लखाति ॥ १७ ॥
अलंकार में मुख्य द्वै उपमा और स्वभाव।
सकल अलंकारन बिषे परसत प्रगट प्रभाव ॥ १८ ॥
अभिधा उत्तम काव्य है, मध्य लच्छना लीन।
अधम व्यंजना रस कुटिल उलटी कहत नवीन ॥ १९ ॥
दसा अवस्था हाव दस यद्यपि सकल तियानि।
तदपि रसिक क्रम ते कहत मुग्ध मध्य प्रौढ़ानि ॥ २० ॥
दसम अवस्था मूरछा कहूँ मरन ह्वै जात।
नीरस जानि न बरनिए कठिन करुन सुखघात ॥ २१ ॥
बिमल सुद्ध सिंगार-रस देव अकास अनंत।
उड़ि-उड़ि खग ज्यौं और रस बिबस न पावत अंत ॥२२॥

---

* यमराज, मृत्यु।

† एक प्रकार का फल, जो देखने ही में अच्छा होता है।

‡ लाल रंग का फूल, जो ज़हर होता है।

§ फल लाल रंग का।

पात्र मुख्य सिंगार को सुद्ध सुकीया नारि।
प्रथम संग नवनेह के बरे* परे दिन चारि ॥ २३ ॥
परकीया उपपति बिरह होति प्रेम-आधीन।
पति संपति तन बिपति मैं दौरि परै पनपीन ॥ २४ ॥
पर-रस चाहै परकिया तजै आपु गुन गोत।
आप औटि खोवा मिलै खात दूध फल होत† ? ॥ २५ ॥
काची प्रीति कुचालि की बिना नेह रस रीति।
मार रंग‡ मारू मही§ बारू की-सी भीति ॥ २६ ॥
मुग्धादिक बयभेद अरु मान सुरत सुरतंत।
बरने मत साहित्य के उत्तम कहो न संत ॥ २७ ॥
रसनि-सार सिंगार-रस, प्रम-सार सिंगार।
बिना प्रेम दंपति बिपति संपति सुख दुख-भार ॥ २८ ॥
सरस भाव उर अंकुरित फूलि फलै सुख-कंद।
सुपन, दरस, सुमिरन, परस, बरसत रस-आनंद ॥२९॥

---

* विवाह हुए।

† खोया को पानी में घोलकर और औटाकर जो दूध बनाया जाता है, वह कृत्रिम, हानिकर और कुस्वादु होता है। असली दूध लाभकर, सुस्वादु और पौष्टिक होता है। स्वकीया और परकीया की प्रीति में भी इसी प्रकार असली और नक़ली दूध का भेद है।

‡ रंग का मरना; चौपड़ में चार नरदें रंग की, चार बदरंग की होती हैं। रंग की नरद मरने से विशेष हानि होती है।

§ मारनेवाली मही = दलदल।

(३)

प्रेम

मायादेव नायिका, नायक पूरुष आप।
सबै दंपतिन में प्रगट देव करै तिहि जाप ॥ ३० ॥
छेम छिमा छिति प्रेम की हेम भरै तेहि साखि।
छिद्यो, भिद्यो, औंधो भर्‌यो अंग संग अभिलाखि* ॥ ३१ ॥
दंपति सुख संपति सजत तजत बिषय-बिष-भूख।
देव सुकबि जीवत सदा पीवत प्रेम-पियूख † ॥ ३२ ॥
नागर अरु ग्रामीन-गति समुझत परम प्रबीन।
कामु कहा तिनको जु सठ कामुक हृदै मलीन ॥ ३३ ॥
तनिक झुठाई प्रेम की झूठे कुल-गुन-गोत।
प्रेमीजन प्रिय प्रेम-बस जगमग जग मैं होत ॥ ३४ ॥
नव सुंदर दंपति जदपि सुख-संपति को मूल।
प्रेम बिना छिन छेम नहिं हेम-सलाका तूल‡ ॥ ३५ ॥

---

* सोना अंग-संग रहने की अभिलाष से अपने को छेदवाता, भिदाता तथा लटकता और साँचे में भरा जाता है।

† जो प्रेम-पियूष दंपति के पास होता है, उसमें विषय-विष की चाह नहीं होती है।

‡ समान। दंपति परम सुंदर क्यों न हों, परंतु यदि उनमें प्रेम नहीं है, तो उनके लिये क्षण-भर को भी कुशल नहीं है। दंपति-सुख के लिये प्रेम आवश्यक है, सौंदर्य नहीं।

प्रेम-पियूष-पयोधि मैं मिलत बिमल निरदुंद।
न्यारो होत न एक ह्वै ज्यौं जल ते जल-बुंद॥ ३६॥
पूरन पुन्य उदोत जेहि प्रेम-पियूष*-पयोधि†।
निकसी निरमल चंद्रिका, बिकसी सब जग सोधि॥ ३७॥
प्रेमवती पद्मिनि हरै मधुकर-उर की प्यास।
बूड़ि मरै अलि धूलि मैं केतकि पद-बिन्यास॥ ३८॥
प्रेम रूप रस बस करै तिय मैं प्रेम अनूप।
यमकी-सी तिय प्रेम बिनु मनु आसीबिष‡ रूप॥ ३९॥
प्रेम कलह मध्या कलुष प्रौढ़ा मानस गर्ब।
रोख दोख सों मिलत नहिं प्रेम पोष सुख पर्ब॥ ४०॥
तब ही लौं सिंगार रसु, जब लगि दंपति-प्रेम§।
मलिन होत रस प्रेम बिन ज्यौं कलई को हेम॥ ४१॥
यह बिचार प्रेमीन को बिषयी जन को नाँहि।
बिषय बिकाने जनन की प्रेमो छियत+ न छाँहि॥ ४२॥
ऐसे ही बिन प्रेम रस नीरस रस सिंगार।
प्रेम बिना सिंगार हू सकल रसायन सार×॥ ४३॥

---

* अमृत।

† समुद्र।

‡ सर्प।

§ कवि दंपति-प्रेम से परिपूर्ण रस को ही श्रृंगार-रस मानता है।

+ छुवत।

× श्रृंगार विना प्रेम के नीरस है, किंतु विना श्रृंगार का भी प्रेम सरस है।

गति अनन्य* मुग्धानि मैं तनमयता† नित होति।
अंधकार जरि जात उर प्रेम-दीप की जोति ॥ ४४ ॥

---

* न, अन्य = अनन्य, अर्थात् जिसको दूसरी गति न हो।
† लीन हो जाना।

विषय-सूची

देव-सुधा

(१)

वंदना

राखी न कलप तीनो काल बिकलप मेटि,
कीनो संकलप, पै न दीनो जाचकनि जोखि ;
नाग, नर, देव-महिमा गनत नंदजू की,
माँगन जु आयो, सो न आँगन ते गयो रोखि।
दए सब सुख, गए बंदी न बिमुख देव-
पितर अनंदी भए नंदीमुख-मख पोखि ;
घरनि - घरनि सुर-घरनि सराहैं सबै
धरनि मैं धन्य नँदघरनि तिहारी कोखि ॥१॥

कलप (सं० कल्पन = उद्भावना करना [दुःख की]) = विलाप करना, बिलखना। विकलप (विकल्प) = संदेह, भ्रांति। जोखि = तौल करके, परिमाण करके। रोखि (रोषि) = रुष्ट होकर, अप्रसन्न होकर। नंदीमुख (नांदीमुख) = श्राद्ध-विशेष, जो पुत्र-जन्म के उत्सव में किया जाता है। मख = यज्ञ। नंदघरनी = नंद की पत्नी अर्थात् यशोदा।

पायन नूपुर मंजु बजैं, कटि किंकिनि मैं धुनि की मधुराई,
साँवरे अंग लसै पट पीत, हिये हुलसै बनमाल सुहाई ;

माथे किरीट, बड़े दृग चंचल, मंद हँसी मुख-चंद जुन्हाई,
जै जग-मंदिर-दीपक सुंदर श्रीव्रज-दूलह देव-सहाई ॥ २ ॥

भगवान् की प्रार्थना है। लसै=शोभै, सोहै। हुलसै=आनंद लेती है, हिलती-डुलती है।

बटु ह्वै नटु ह्वै कै रिझावैं जिन्हैं हरि, देव कहैं बतियाँ तुतरी,
बिधि* ईस के सीस बसी बहु बारन कोरि कला रज सिंधु तरी† ;
जगमोहनि राधे तू पाइँ परों बृषभान के भौन अभै उतरी,
गुन बाँधे नचावति तीनिहुँ लोक लिए कर ज्यों कर की‡ पुतरी ॥३॥

राधा के माहात्म्य का कथन है। नट ह्वै=नट बनकर। बटु ह्वै=ब्रह्मचारी बनकर। तुतरी=तोतली। कवि राधिका तथा गंगाजी को एक ही मानता है। भगवान् राधा को नट का रूप धरके तथा गंगा को बट (ब्रह्मचारी, वामन) का रूप धरके रिझाते हैं, तथा दोनो के प्रसन्नतार्थ बालक के समान तोतली बातें करते हैं। श्रीकृष्ण तथा वामन, दोनो का बालरूप होने से ऐसा कथन और भी योग्य है। राधिका गंगाजा के रूप में विधि के (कमंडलु में) तथा महादेव के शीश के बहुत-से बालों (जटाओं) में बसीं, अथच (भगीरथ-रथ के पीछे) करोड़ कल्लोल करके समुद्र की राज्य-श्री को भी तिर गईं। वही गंगाजी जग मोहनेवाली राधा होकर निर्भयता-पूर्वक बृषभानु

---

* बिधि के (ब्रह्मा के यहाँ अर्थात् उनके कमंडलु में) (अथच) ईस के शीश में बसीं।

† करोड़ कलाएँ (भगीरथ के रथ के पीछे करोड़ प्रकार से क्रीड़ा-कल्लोल) करके सिंधु की राज्य-श्री को तर गईं। गंगाजी के समुद्र-संगम करने से यह भी कहा जा सकता है कि वह उसे पार कर गईं।

‡ कल की बनी हुई पुतली।

के घर में उतरीं । उनके मैं पैर पड़ती हूँ । वही राधा तीनो लोकों को कठ की पुतली के समान हाथ में लिए हुए (स्ववश किए) अपने गुणों से बाँधकर नचा रही हैं ।

तीर धर्‌यो जु गहीर* गुहा गिरि धीर धर्‌यो सु अधीर महा हैं,
पूँछती पीर भरे दृग नीर, त्यों एकै समीर करैं औ' सराहैं ;
छोर भिजै यक पोंछती चीर लै, राधे रहैं तिरछी करि छाहैं,
भेटती भीर अहीरन की बर बीरज की बलबार† की बाहैं ॥ ४ ॥

गोवर्धन-धारण का वर्णन है । तीर धर्‌यो = किनारे पर (उतारकर) रख दिया । बर बीरज = श्रेष्ठ वीर्य (पराक्रम) ।

बारे बड़े उमड़े सब जैबे को, हौं न तुम्हैं पठवों बलिहारी,
मेरे तौ जीवन देव यही धनु, या ब्रज पाई मैं भीख तिहारी ;
जानै न रीति अथाइन की, नित गाइन मैं बनभूमि निहारी,
याहि कोऊ पहिचानै कहा, कछु जानै कहा मेरो कुंजबिहारी ॥ ५ ॥

जादव बृद्ध जौ लेन पठाए तँ तौ धनु गोधनु लै सबु जैयै,
या लरिकाहि कहा करिहै नृप गोप-समूह सबै सँग ह्वैयै ;
तौ ही लौं जीवनु मो ब्रज, जौ लगि खेलतु साथ लिए बलभैयै,
सर्बसु कंसु हरौ न अभै‡ किन आँखिनु ओट करौ न कन्हैयै ॥६॥

बेदन हूँ गने गुन गनै अनगने भेद,
भेद बिन जाको गुन निरगुनहू यहै ;

* गहिरा ।

† बलदेव के भाई अर्थात् कृष्ण ।

‡ अभी ।

केतिक बिरंच्यो महा सुखन को संच्यौ जहाँ,
बंच्यो ब्रज भूप सोई परब्रह्म भूप है।
सोई सुनि सुनि अवराधा अब राधा-जस
जानत न देव कोई कहा धौं अनूप है;
तेज है कि तप है कि सील है कि संपति है,
राग है कि रंग है कि रस है कि रूप है॥ ७॥

राधा के यश का वर्णन तथा उनकी आराधना है।

बिरंच्यो = विशेष करके रंच (न्यून) किया। संच्यो = समूह। अवराधा = आराधना (पूजा) की।

चतुर्थ चरण राधा के यश के विशेषणों से भरा है।

भूलि हूँ कढ़ै जो कटु बोल, तौ कढ़ाऊँ जीभ,
छार डारौं आँखिन की आँसू झलकनि पै*;
कौन कहै कैसी सौति सो तौ ठकुरायनि लिखी,
है ब्रज-बालन के भाल फलकनि† पै।
ह्वै रहौं नजीकी पै न जी की दुचिताई गहौं,
पीकी प्रानप्यारी लहौं नीकी ललकनि पै‡;

---

* यदि जीभ से भूलकर भी दुर्वचन निकलें, तो उसे निकलवा लूँ, और यदि आँख में आँसू झलक जायँ, तो उस पर भी धूल डाल दूँ। प्रयोजन यह कि सौति द्वारा निरादर सहकर भी क्षोभ न करूँ।

† जब ब्रह्मा ने मस्तक पर ही सौति का होना लिख दिया है, तब वह कैसी है, इसकी चर्चा कौन चलावे?

‡ सौति का आदर देखते हुए निकट रहकर भी मन उद्विग्न न करूँ, अर्थात् ज्येष्ठा सपत्नी को चित्त की उमंगों से भेटूँ।

दूजो नहिं देव, देव पूजों राधिका के पद,
पलक न लाऊँ धरि लाऊँ पलकनि पै*॥ ८॥

सखी गोपियों को शिक्षा देती है, और उनसे राधिका की प्रार्थना तथा पूजा करने को कहती है।

छार डारौं=धूल डाल दूँगी। फलकनि=तख़्ते, पट्टे। नजीकी=पास की। हौं=मैं। ललकनि=उद्दाम इच्छा। पलक न लाऊँ=थोड़ा भी विलंब न करूँ। अथवा पलक न मीचूँ, किंतु एकटक लगाके देखा करूँ।

(२)

सिद्धांत-समता

ह्वै उपजे रज-बीज ही ते बिनसे हू सबै छिति छार कै छाँड़े,
एक-से देखु कछू न बिसेखु ज्यों एकै उन्हार† कुम्हार के भाँड़े;
तापर ऊँच औ' नीच बिचारि बृथा बकि बाद बढ़ावत चाँड़े,
बेदनि‡ मूँद कियो इन दूँदु कि सूदु अपावन पावन पाँड़े॥९॥

अधर्म

मूढ़ कहैं मरि कै फिरि पाइए ह्याँ जु लुटाइए भौन भरे को,
ते खल खोइ खिस्यात खरे अवतार सुन्यो कहुँ छार परे को;

---

* देव कवि कहता है कि कोई दूसरा देवता नहीं है, केवल राधिका के पैर पूजूँगी, अथच उनको आँखों पर रख लाऊँगी, और इसमें पल-भर भी देर न करूँगी।

† अनुहारि, एक ही तरह।

‡ वेदों को बंद करो, क्योंकि इन्होंने दुंद मचाया है कि शूद्र अपावन हैं, और पाँड़े अर्थात् ब्राह्मण पवित्र हैं।

जीवत तौ व्रत भूख सुखौत सरीर महा सुररूख* हरे को ,
ऐसी असाधु असाधुन की बुधि साधन देत सराध मरे को ॥१०॥
को तप कै सुरराज भयो, जमराज को बंधनु कौने खुलायो ,
मेरु मही मैं सही करि कै गथ ढेरु कुबेरु को कौने तुलायो ;
पापु न पुन्य न नर्क न सर्ग मरो सुमरो फिरि कौने बुलायो ,
गूढ़ ही वेद पुराननि बाँचि लबारनि लोग भले भुरकायो ॥११॥
परपक्ष-निरूपण ।

श्रृंगार

देव सुन्यो सब नाटक चाटक चाट उचाटन मंत्र अतंक को† ,
पै तरुनी त्रिय के दृग-कोर ते और नहीं चित-चोर चमंक को ;
घूँघुट‡ ओट की आधिक चोट को सूल सम्हारै को मूल कलंक को,
बीछी§ छुवै किन छीछी बिसौ वह तौ बिसु बिस्व बसीकर बंक को।
चाटक = चेटक = जादू । चाट = चाह, वशीकरण ।

---

* कल्पद्रुम । पर-पक्ष-निरूपण ।

† सब नाटक, चाटक, चाट, उच्चाटन (चित्त को हुमसा देना) आदि के मंत्रों के आतंक (भारी प्रभाव) को तो सुना, किंतु चित्त चुरानेवाली तथा उसे चकित करने को तरुणी स्त्री की चख-कोर से बढ़कर और कोई वस्तु नहीं देखी ।

‡ घूँघुट की आड़ से स्त्री के नेत्र की पूरी चोट को कौन कहे, उसकी आधी चोट की पीड़ा कलंक का मूल होने पर भी कौन सँभाल सकता है ?

§ बीछी भले ही छुवै (डंक मारै), विष भी उसके सामने छीछी (तिरस्कृत) है, क्योंकि उस बंक (तिरछी चितवनवाली) स्त्री का विष संसार को वश करनेवाला है ।

कवि

जाके न काम न क्रोध बिरोध न लोभ छुवै नहिं छोभ को छाहौं,
मोह न जाहि रहै जग-बाहिर, मोल जवाहिर तौ अति चाहौं;
बानी पुनीत ज्यौं देवधुनी* रस आरद† सारद के गुन गाहौं,
सील-ससी, सबिता-छबिता, कबिताहि रचै, कबि ताहि सराहौं।

छाहौं = छाहँ भी। जग-बाहिर = जो लोकोत्तर हो।

कवि का उच्च कर्तव्य वर्णित किया गया है।

सारद के गुन गाहौं = सरस्वती के गुणों का अवगाहन करो (अर्थात् कवि में ये गुण खोजो)। प्रयोजन यह है कि कवि में शारदा के गुण होने चाहिए।

जानिए न जात पहिंचानिए न आवत,
बितीत्यो दिन-राति पै न रीत्यो परिजातु है;
जगत प्रवाह पथ अकथ अथाह देव,
दया के निबाह कहूँ कोई तरि जातु है।
केते अभिमानी भए पानी के बलूला, कोई
बानी बीजु धरम धरा पै धरि जातु है;
सबद रसायनि के अरथ उपायनि,
अमर तरु कायनि अमर करि जातु है॥१४॥

कवि-माहात्म्य का वर्णन है। निबाह = निर्वाह। सबद = शब्द। बलूला = बुल्ला।

---

* गंगा।

† आर्द्र, गीला, भीगा।

सत्य

जो कछु पुन्य अरन्य जल स्थल तीरथ खेत निकेत कहावै,
पूजन-जाजन औ' जप-दान अन्हान परिक्रम गान गनावै ;
और किते व्रत नेम उपास अरंभु कै देव को दंभु दिखावै,
हैं सिगरे परपंच के नाच जु पै मन मैं सुचि साँच न आवै ॥१५॥
है अभिमान तजे सनमान बृथा अभिमान को मान बहैए ,
देव दया करैं सेवक जानि सुसील सुभाय सलोनी लहैए ;
को सुनि कै बिन मोल बिकाय न बोलन कोइ को मोल न हैए,
पैए असीस लचैए जो सीस लची रहिए तब ऊँची कहैए ॥१६॥

कवि उपदेश के हेतु से सिद्धांत का वर्णन करता है । सलोनी = लावण्यमयी ।

भक्ति

कथा मैं न, कंथा मैं न, तीरथ के पंथा मैं न,
पोथी मैं, न पाथ मैं, न साथ को बसीति मैं ;
जटा मैं न, मुंडन न, तिलक त्रिपुंडन न,
नदी-कूप-कुंडन अन्हान दान-रीति मैं ।
पीठ-मठ-मंडल न, कुंडल कमंडल न,
माला-दंड मैं न, देव देहरे को भीति मैं ;
आपु ही अपार पारावार प्रभु पूरि रह्यो,
पाइए प्रगट परमेसुर प्रतीति मैं ॥१७॥

ऐसो जु हौं जानतो कि जैहै तू बिषै के संग,
एरे मन मेरे, हाथ-पायँ तेरे तोरतो ;

आजु लौं हौं कत नरनाहन की नाहीं सुनि,
नेह सों निहारि हेरि बदन निहोरतो।
चलन न देतो देव चंचल अचल करि,
चाबुक चेतावनीन मारि मुँह मोरतो;
भारो प्रेम-पाथर नगारो दै, गरे सों बाँधि,
राधाबर-बिरद के बारिधि मैं बोरतो ॥१८॥

वैराग्य

बाग्यो बन्यो जरतार को* तामहिं ओस को हार तन्यो मकरो ने†,
पानी मैं पाहन-पोत चल्यो चढ़ि, कागद की छतुरी सिर दीने‡ ;
काँख मैं बाँधि कै पाँख पतंग के देव सुसंग पतंग को लीने§ ,
मोम के मंदिर माखन को मुनि बैठ्यो हुतासन आसन कीने×॥१९॥
आवत आयु को द्यौस अथौत, गए रवि यों अँधियारिए ऐहै ;
दाम खरे दै खरीदु खरो गुरु, मोह की गोनो न फेरि बिकैहै।

आध्यात्मिक छंद है।

*. संसार की बड़ाइयाँ।

†. माया।

‡. जीवात्मा संसार में इसी प्रकार जाता है।

§. पतिंगा के पंख बग़ल में बाँधकर उड़ना चाहते हैं सूर्य के निकट, किंतु वे जल जायँगे। प्रयोजन, सांसारिक वस्तुओं की असारता के प्रदर्शन का है।

×. मोम का मंदिर संसार है, माखन का मुनि शरीर और हुताशन जीवात्मा।

देव छितीस की छाप बिना, जमराज जगाती* महादुखु दैहै ;
जात उठी पुर देह की पैंठ†, अरे बनियै बनियै नहिं रैहै ॥२०॥

देव प्रीति-पंथा चीरि चीर गरे कंथा डारि,
भसम चढ़ाय खान-पान हू न छूजिए ;
दूरि दुख दुंद राखि मुंदरा‡ पहिरि कान,
ध्यान सुंदरानन गुरू के पग पूजिए ।
शृंगी की टकी§ लगाय भृंगोकीट× कै मनु
बिरागिनि ह्वै बपु बिरहागिनि मैं भूजिए ;
केली तजि राधिका अकेली होय जोगिनि, तौ
अलख जगाय हेली+ चेली चलि हूजिए ॥ २१ ॥

राधिकाजी की वियोगिनी दशा की संभावना पर गोपियों का योग धारण करना वर्णित है ।

कंथा = कथरी । दुंद = उत्पात । शृंगी = एक प्रकार का सींग का बाजा, जो प्रायः योगियों के पास होता है ।

काम पर्‌यो दुलही अरु दूलह, चाकर यार ते द्वार ही छूटे,
माया के बाजने बाजि गए, परभात ही भातखवा उठि बूटे ;
आतसबाजी गई छिन में छुटि, देखि अजौं उठिकै अँखि फूटे,
देव दिखैयन दाग बने रहे, बाग बने ते बरोठेई लूटे ॥ २२ ॥

---

*. चुंगी का अफ़सर ।

†. बाज़ार ।

‡ मुद्रा, जो फ़क़ीर लोग कान में पहनते हैं ।

§ टक, धुनि ।

× लखोरी । मन भृंग-कीट-सा करके ।

+ सखी, हे अली ।

भृत्य

पावक में बसि आँच लगै न, बिना छत खाँड़े कि धार पै धावै,
मीत सों भीत,अभीत अमीत सों, दुक्ख सुखी, सुख मैं दुख पावै*;
जोगी ह्वै आठ हू जाम जगै, अठजामनिकामनि सौं मनु लावै,
आगिलो पाछिलो सोचि सबै फल कृत्य करै तब भृत्य कहावै॥२३॥

(३)

विविध वर्णन

निसि-बासर सात रसातल लौं सरसात घने घन बंधन नाख्यो,
ब्रज† गोकुल ऊ ब्रज गोकुल ऊपर ज्यो परज्यो परलौ मुख भाख्यो;
करुनाकर त्यों बर सैल लियो करुना करि कै बरसै अभिलाख्यो‡,
मुरको न कहूँ मुर को रिपु री अँगुरी न मुर्‌यो अँगुरी पर राख्यो।

गोवर्धन-धारण का वर्णन है। रसातल = पृथ्वी-तल, पाँचवाँ लोक। बंधन नाख्यौ = बंधन तोड़ दिए, अर्थात् अतिवृष्टि की मर्यादा भंग कर दी। व्रज-गोकुल = ब्रज की गायों का वंश तथा ब्रज के गोकुल-ग्राम। मुर को रिपु री = एरी, मुरारि। मुर्‌यो = मुड़ा, हिला।

* दुख में सुखी रहे और सुख में दुखी, अर्थात् सुख की यहाँ तक इच्छा न करे कि सुख से उसे दुख हो।

† व्रज की प्रजा ने ज्यों ही अपने मुख से यह कहा कि व्रज गोकुल ग्रामों तथा व्रज के गो-वंश पर प्रलय पड़ी, त्यों ही करुणाकर भगवान् ने श्रेष्ठ पहाड़ करुणा करके उठा लिया, तथा यह अभिलाषा की कि अब घन और भी बरसे।

‡ इस पद का पाठांतर ऐसा भी है—

'करुनाकर त्यों कर सैल लियो करुना करिकै करसै अभिलाख्यो।'

इस दशा में अर्थ यह आवेगा कि हाथ में सैल लेकर उसे खींचने की इच्छा की (अर्थात् खींचा), और तब ज़रा भी न मुरककर उँगली पर रख लिया।

कंपत हियो, न हियो कंपत हमारो, क्यों
हँसी तुम्हैं अनोखी, नेकु सीत मैं ससन देहु;
अंबर हरैया हरि अंबर उज्यारो होत,
हेरिकै हँसै न कोई, हँसै तौ हँसन देहु।
देव दुति देखिबे को लोयन मैं लागी लखौं,
लोयन मैं लाज लागी, लोयन लसन देहु;
हमरे बसन देहु, देखत हमारे कान्ह,
अबहूँ बसन देहु, ब्रज मैं बसन देहु ॥ २५ ॥

चीर-हरण का वर्णन है। इसमें शृंगारिक तथा आध्यात्मिक, दोनो अर्थ बहुत अच्छे निकलते हैं।

गोपी-वचन—हमारा हृदय काँपता है (शृंगार के अर्थ में जाड़े से तथा आध्यात्मिक में योग साधने की क्रियाओं की कठिनता से)।

भगवद्वचन—हमारा हृदय नहीं काँपता (इतना जाड़ा नहीं है, योग ऐसा कठिन नहीं)।

गो०—यह अनोखी हँसी तुम्हें क्यों (भाती) है?

भ०—अपने को ज़रा जाड़े में साँसें लेने दो। शृंगार में प्रयोजन यह है कि अभी नहीं निकलती हो, जब जाड़ा लगेगा, तब स्वयं निकल आओगी। आध्यात्मिक प्रयोजन यह है कि थोड़ा-सा शीतोष्णोद्भव कष्ट सहन किए विना योग-सिद्धि अप्राप्य है।

गो०—हे कपड़े हरण करनेवाले भगवान्! आसमान उजियाला हुआ जाता है (जिससे लोग-बाग यहाँ आ जावेंगे), कोई देखकर हँसे न?

भ०—यदि आकाश उजियाला हो रहा है, और कोई हँसे, तो उसे हँसने दो। प्रयोजन यह है कि शुद्ध प्रेम और योग, दोनो के

लिये लोक-लाज अनावश्यक है, और इसका छोड़ना ही ठीक है। एक यह भी बात है कि खेचरी मुद्रा से ब्रह्म का ध्यान आकाश में होता है।

देव दुति देखिबे को लोयन में लागी लखौ = यह भी भगवान् का वचन है। शृंगार के अर्थ में यह प्रणय-निवेदन है कि देव कवि कहता है कि तुम्हारी शोभा देखने को हमारे नेत्रों में लगन है, सो देखो, और लोक-लाज की परवा छोड़ दो। आध्यात्मिक अर्थ में यह प्रयोजन है कि दैवी शोभा देखने को आँखों में (स्वाभाविक) लगन है, उसे देखो (मत भुलाओ), और लोक-लाज त्याग द्वारा योग से पुष्ट करो।

गो०—हमारी आँखों में शरम लगी है (हम शृंगारिक अथवा आध्यात्मिक साधनों के लिये लोक-लाज नहीं छोड़ सकतीं)।

भ०—यदि आँखों में लाज लगी है, तो उन्हें शोभा पाने दो, अर्थात् संसार को उसी दशा में आँखें देखने दो, जिससे लोक-लाज आप-ही-आप छूट जायगी।

गो०—हे हमारे कान्ह ! देखते क्या हो ? हमारे कपड़े दो। (अरे, इतनी देर करते हो) अब भी कपड़े दे दो, और व्रज में बसने दो; अर्थात् ऐसे उपद्रव करोगे, तो हम व्रज से उजड़ जावेंगी। आध्यात्मिक प्रयोजन यह है कि योग हमें नापसंद है, तुम हमें व्रज में ही बसकर भक्ति करने दो। एक अर्थ यह भी निकल सकता है कि गोपी कहती हैं कि यह योग या लोक-लाज का परित्याग हमारे वश का नहीं है, तुम देखते क्या हो, (कपड़े) दो। इस पर भगवान् का उत्तर है कि हमारे अर्थात् यदि तुम्हारे वश का नहीं है, तो हमारे का तो है।

गंग-तरंगनि बीच बरंगिनि ठाढ़ी करैं जपु रूप उदोती,
देव दिवाकर की किरनैं निकसैं बिकसैं मुख-पंकज जोती;

नीर भरी निचुरैं अलकैं छुटि कै छलकैं मनो माँग ते मोती,
बिज्जुलि-से झलकैं लपटे कन कज्जल-से अँग उज्जल धोती*॥२६॥

नायिका के स्नान (प्रातःकाल के स्नान) का वर्णन है। यह छंद जाति-विलास का है, और ब्राह्मणी के विषय में कहा गया है।

कालिय काल महा बिष ब्याल जहाँ जल ज्वाल जरै रजनी दिनु,
ऊरध के अध के उबरै नहिं, जाकी बयारि बरै तरु ज्योतिनु;
ता फनि की फन-फासिनु पै फँदि जाइ फँसे उकसे न कहूँ छिनु,
हा ब्रजनाथ! सनाथ करो हम होती हैं नाथ अनाथ तुम्हैं बिनु॥२७॥

कालिय-मर्दन का वर्णन है। ऊरध के = ऊपर के (पक्षी वग़ैरा) अध के = नीचे के (जलचर)। उबरै = बचै। उकस्यौ न = निकला नहीं। फन-फाँसिनु पै = फन के फंदों पर।

मोर को मुकुट कटि पीत पटु कस्यो, कैसी
केसावलि ऊपर बदन सरदिंदु के,
सुंदर कपोलन पै कुंडल हलत, सुर
मुरली मधुर मिले हाँसी रस बिंदु के।
माँगती सुहागु नाग-सुंदरी सराहि भागु,
जोरे कर सरन चरन अरबिंदु के;
किंकिनी रटनि तालताननि तननि देव,
नाचत गुविंद फन फननि फनिंदु के॥२८॥

केसावलि = केश-समूह। तननि = विस्तार, खिचाव।

---

* उज्ज्वल धोती से ढके हुए कुछ-कुछ खुले अंग जो नेत्र धुलने से काजल के कणों से लिपटे हुए हैं, वे बिजली की भाँति चमक रहे हैं।

फैलि-फैलि, फूलि-फूलि, फलि-फलि, हूलि-हूलि,
झपकि-झपकि आई कुंजैं चहूँ कोद ते;
हिलि-मिलि हेलिनु सौं केलिनु करन गईं,
बेलिनु बिलोकि बधू ब्रज की बिनोद ते।
नंदजू की पौरि पर ठाढ़े हे रसिक देव
मोहनजू मोहि लीनी मोहनी बिमोद ते;
गाथनि सुनत भूली साथनि की, फूल गिरे
हाथनि के हाथनि ते, गोदनि के गोद ते ॥२६॥

हेलिनु सौं = हाव-सहित ; हेला एक हाव का नाम है। हूलि = उकेल करके। बिमोद = विशेष आनंद। गाथनि = चरित्रों को।

अंबर अडंबर डमरु* गरजत बारि
बरसि-बरसि सोखै बरसै बिसालु है;
देव पल घरी जाम दोऊ दृग† सेत-स्याम
न्यारो एक-एक मूँदि खोलत उतालु‡ है।
कौतुक त्रिबिध चहूँ चौहटे नचायो मीचु
महि मैं मचायो चल अचलनि§ चालु है;

* मेघ का शब्द डमरू के समान है।

† सूर्य-चंद्र दोनो आँखें रात-दिन करते हैं।

‡ 'उतालु' माने 'जल्दी-जल्दी' अर्थात् आँखों का खोलना और मूँदना जल्दी-जल्दी होता है।

§ अचल पदार्थ पृथ्वी के चलने से चल हैं। यह भी कहा जा सकता है कि पृथ्वी में चल तथा अचल, दो प्रकार के पदार्थों की रीति चलाई गई है।

खेलतु खिलैया ख्यालु थाकि न थिरातु कालु
माया गुन जालु अदभुत इंद्रजालु है ।। ३० ।।

एक होत इंद्र, एक सूरज औ' चंद्र, एक
होत हैं कुबेर कछु बेर देत नाया के ;
अकुल कुलीन होत, पामर प्रबीन होत,
दीन होत चक्कवै चलत छत्र छाया के ।
संपति-समृद्धि, सिद्धि-निद्धि, बुद्धि-बृद्धि सब
भुक्ति-मुक्ति पौरि पर परी प्रभु जाया के ;
एक ही कृपा-कटाच्छ कोटि यच्छ रच्छ नर
पावैं घरबार दरबार देवमाया के ।। ३१ ।।

पाँवर = पामर, नीच । चक्कवै = चक्रवर्ती राजा । पौरि पर = दरवाज़े पर । समृद्धि = ऐश्वर्य । भुक्ति = भोग ।

तार मृदंग महारव सौं झनकारत झाँझन के गन जामें ,
गुंजत ढोल कदंबक* पुंज कुलाहल काहल† नादति तामें ;
भेरी घनेरी नरी सुरनारि नरीसुर नारि‡ अलापी सभा में ,
गाजत मेघ घने सुर लाजत बाजत माया के द्वार दमामें ।।३२।।

---

* कदंबक = समूह ।

† ढोल-पुंज गुंजत, कुलाहल होत, तामैं कदंबक काहला नादति । काहला = अप्सरा ।

‡ घनेरी भेरी, नरीसुर (नली से बजनेवाले बाजे), न अरि (हित) नरीसुर नारि सभा मैं अलापी ।

मात ह्वै आपु जनी जगमात कियो पति तात सुतासुत जायो*,
ता उर माँह रमा ह्वै रमी बिधि बाम नरायन राम रमायो ;
लोक तिहूँ जुग चारिहूँ मैं जस देखौ बिचारि हमारोई गायो ,
जौ हम सीस बसैं रजनीस के, तौ वहि ईस लै सीस बसायो†॥३३॥

करुणा

पीर पराई सों पीरो भयो मुख, दीननि के दुख देखे बिलाती‡,
भीजि रही करुना§ करुनारस काल कि केलिनु सों कुम्हिलाती ;
लै-लै उसासन आँसुन सों उमगै सरिता भरिकै ढरि जाती× ,
नाव लौं नैन भरैं उछरैं जल+ ऊपर ही पुतरी उतराती ÷॥३४॥

---

* माया ने माता होकर और जगज्जननी से अवतार लेकर, अपने पिता ईश्वर से विवाह करके पुत्र और पुत्रियाँ उत्पन्न कीं, और उस ईश्वर के उर में रमा होकर रमीं, और उल्टी गति लेकर नारायण और राम को रमाया।

† जब कलंक चंद्रमा के सीस पर बसा, तब उस चंद्र को महादेव ने माथे पर चढ़ाया।

‡ इतना संकोच करती है, मानो लुप्त ही हो जाती है।

§ करुणादेवी करुणा (दया) के रस से भीगी हुई है।

× नदी भरकर बह जाती है।

+ जब पानी भर जाता है, तब नीचे दब जाते हैं, और जब पानी उनसे निकल जाता है, तब ऊपर उछल आते हैं।

÷ जल के ऊपर मानो आँख की पुतली उतराती है, अर्थात् केवल जल और पुतली दिखलाई देती है, अथच शेष आँख दिखलाई देती ही नहीं।

इस छंद में करुणा का बड़ा अच्छा वर्णन है।

भक्ति

प्यास न भूख, न भूषन की सुधि, भाव सुभूषन* सौं उपजावै,
देव इकंतहि कंतहि के गुन गावति नाचति नेह सजावै ;
प्रेम-भरी पुलकै मुलकै उर व्याकुल कै कुल-लोक लजावै† ,
लै परबी परबी न गनै कर बीन लिए परबीन बजावै‡ ॥३५॥

श्रद्धा

कान भुराई पै कान न आनति§ आनन आन कथा न कढ़ी है×,
एकहि रंग रँगी नख ते सिख एकहि संग बिबेक बढ़ी है ;

---

* अच्छे अलंकारों (सजावटों, गुणों) से भाव उत्पन्न करती है ।

† (पति को देखकर) प्रेम से भरी हुई पुलकै (रोमांचित होती है), तथा (पति के ओट हुए) उर व्याकुल कै मुलकै (झाँकती है उसे देखने को) तथा अपने भारी प्रेम से पूरे लोक को लज्जित करती है । यहाँ पति से प्रयोजन परमेश्वर का है, क्योंकि वर्णन भक्ति का हो रहा है ।

‡ प्रवीण, पर्व को पकड़ के और पर्व की परवा भी न करके हाथ में वीणा लेकर बजाती है, अर्थात् पर्व में तथा विना पर्व भी, हर समय बजाया करती है । वीणा में जो पर्दे होते हैं, उन्हें भी पर्व कहते हैं । पर्व का यह अर्थ मानने से इस पद का यह प्रयोजन बैठेगा कि वीणा के पर्व पर हाथ रखकर पर्व (होली, दिवाली आदि) की परवा न करके वह प्रवीणा वीणा हाथ में लेकर बजाती है, अर्थात् पर्व में तो बजाती ही है, वरन् विना पर्व भी बजाया करती है ।

§ भुराई (भुलाने, बहकाने की कानि मर्यादा) पर कान नहीं लाती है, अर्थात् किसी बात पर अविश्वास की रीति पर नहीं चलती है ।

× मुख से एक बात छोड़कर दूसरी कथा ही नहीं निकलती, अर्थात् चित्त में पूरा इकंगीपन है ।

देखिए देव जबै, तब ज्यों हि त्यों*, दूसरी पद्धतियै न पढ़ी है,
को बिरचै† कुल-कानि अचै मन के निहचै हिय चैन चढ़ी है ॥३६॥

दया

हाय दई यहि काल के ख्याल मैं फूल-से फूलि सबै कुम्हिलाने,
दे अदेव बलो बल-हीन चले गए मोह की हौसहि लाने‡;
या जग बीच बचै नहीं मीचु पै, जे उपजे ते मँही मैं मिलाने,
रूप, कुरूप, गुनी, निगुनी, जे जहाँ जनमे, ते तहाँई बिलाने ॥३७॥

वैभव

चाँदनी महल बैठी चाँदनी के कौतुक को,
चाँदनी-सी राधा-छवि चाँदनी बिसाल रैं;
चंद की कला-सी देव दासी संग फूली फिरैं,
फूल-से दुकूल पैन्है फूलन की मालरैं।
छुटत फुहारे, वै बिमल जल झलकत,
चमकैं चँदोवा मनि-मानिक महालरैं;
बीच जरतारन की, हीरन के हारन की,
जगमगी जोतिन की मोतिन की झालरैं ॥ ३८ ॥

बिसाल रैं = (चाँदनी की) भारी छवि हैं। यहाँ रैं-शब्द हैं के अर्थ में आया है।

---

* जब देखिए, तभी ज्यों-की-त्यों रहती है, अर्थात् उसके चित्त में कभी कोई अंतर नहीं आता।

† नई बात कौन बनावे, क्योंकि ऐसे कर्म से कुल-कानि नष्ट हो जाती है।

‡ मोह की हवस ही के लिये चले गए।

उज्जल अखंड खंड सातएँ महल महा-
मंडल सँवारो चंद-मंडल की चोट ही ;
भीतर ही लालनि के जालनि बिसाल जोति,
बाहर जुन्हाई जगी जोतिन की जोटही ।
बरनति बानी चौर ढारति भवानी, कर
जोरे रमा रानी ठाढ़ी रमन की ओट ही ;
देव दिगपालनि की देबी सुखदायनि ते
राधा ठकुरायनि के पायन पलोटही ॥ ३९ ॥

सँवारो = सजा हुआ । चोट ही = आघात करनेवाला, अर्थात् स्पर्धा करनेवाला । लालनि = लाल रत्नों की । जोटही = समूह (यूथ)। बरनति = यश वर्णन करती है। बानी = सरस्वती । महामंडल = एक बड़ा गोल स्थान, अर्थात् (सातवें खंड पर का) एक गोल कमरा । जालनि = जालीदार खिड़कियाँ । रमन की ओट ही = अपने पति की आड़ में ।

मालिनी छंद

हँसि-हँसि पहिराई आपनी फूल-माला,
भुज* गहि गहिराई प्रेम-बीची बिसाला ;
रति-सदन अकेली काम-केला भुलानी,
नन मय बर बानी मालिनी की सुहानी ॥ ४० ॥

मालिन-जाति की स्त्री का वर्णन है । कवि इस छंद में मालिनी

---

* भुज गहि बिसाला (विस्तृत) प्रेम-बीची (प्रेम की लहर की) गहिराई (अगाधता) प्रकट की । ननु = नैनू (नवनीत) ।

छंद के लक्षण भी दिखलाता है। प्रत्येक चरण में दो नगण (।।।) (।।।) मगण (ऽऽऽ) और दो यगण (।ऽऽ) (।ऽऽ) हैं।

गहिराई = गहरी की, अर्थात् अगाधता प्रकट की। बीचि = लहर।

आश्रयदाता

भूलि गयो भोज, बलि-बिक्रम बिसरि गए,
जाके आगे और तन दौरत न दीदे हैं;
राजा राइ राने उमराइ उनमाने,
उनमाने निज गुन के गरब गिरबीदे हैं।
सुबस बजाज जाके सौदागर सुकबि,
चलेई आवैं दस हूँ दिसान के उनीदे हैं;
भोगीलाल भूप लाख पाखर लिवैया जिहि,
लाखन खरचि रचि आखर खरीदे हैं॥४१॥

दीदे = आँख की पुतलियाँ, दृष्टि। उनमाने = अनुमाने, अंदाज़े। उनको माना। गिरबीदे = गिरो रक्खे हुए, रेहन। पाखर = (पारख) परख करनेवाला।

गौरी-सौभाग्य

अचल सो ह्वै रह्यो पुरोहित हिमंचल को,
अंचल दृगंचल सों गाँठि-सी परत ही* ;

---

* पलकों की अंचल से गाँठ पड़ी, अर्थात् न पलक पड़ती है, न अंचल गिरता है। प्रयोजन यह है कि निर्निमेष आँख अंचल के भीतरवाले अंगों पर लग गई। इसी कारण पुरोहित स्तब्ध हो गया।

बधू नवऊढ़ को निहारि मुनि मूढ़ भए,
बचननि बेद बिधि गूढ़ उचरत ही।
चंद-कला च्वै परी असंग गंग ह्वै परी,
भुजंगी भाजि भ्वै परी बरंगी को बरत ही॰;
कामरिपु देव गुन दामरि पहिरि काम,
कामरि करी है भुज भामरि भरत ही† ॥ ४२ ॥

हिमंचल (हिमालय) = पार्वती के पिता। अंचल = आँचल (पार्वती का)। दृगंचल = पलक। भ्वै = पृथ्वी। बरंगी = उच्च-मांगी। कामरिपु = महादेव। गुन = गुनकर, जान-बूझकर। दामरि = रस्सी। कामरि = कंबल। नवऊढ़ = नई ब्याही बधू। मुनि विवाह-कार्य कराते थे।

गूढ़ बन सैल बूढ़े बैल को गहाई गैल,
भूतन चुरैल छैल छाके छबि ओज के;

॰ सर्पिणी लटों से हारकर पृथ्वी पर गिरी। चंद्रकला पार्वती के मुख से हारकर गिर गई। प्रतीपालंकार है। गंगा सौत हो जाने से असंग हुई, क्योंकि वह शिव के मूड़ चढ़ी हुई थीं।

† कामरिपु (महादेव ने) भुज भामरि भरत ही, (पाणिग्रहण करते ही मानो) गुन (जान-बूझकर) दामरि पहिरी, (रस्सी पहनी है, अर्थात् अपने को पाश में डाला है, और) काम कामरि करी है (काम का कंबल ओढ़ा है, अर्थात् अपने को काम-वश कर लिया है)।

यथा कुमारसम्भवे—"पराजितेनापि कृतौ हरस्य, यो कंठपाशौ मकरध्वजेन।"

भंग के न रंग दे भगीरथ को गंग उत—

मंग जटा राखत न राख तन खोज के* ।

देव न बियोगी अब योगी ते सँयोगी भए,

भोगी भोग अंक परजंक चितचोज के † ;

ब्याल गज-खाल मुंड-माल औ' डमरु डारि

ह्वै रहे भ्रमर मुख सुंदर सरोज के ।। ४३ ।।

भोगी = सर्प । भोग = फण । चितचोज के = चित्त को चकित करनेवाला ।

(४)

सीता-सौभाग्य

अनुराग के रंगनि रूप तरंगनि अंगनि ओप मनौ उफनी ,

कबि देव हिये सियरानी सबै सियरानी को देखि सुहाग सनी ;

बर धामन बाम चढ़ी बरसैं मुसुकानि सुधा घनसार घनी ,

सखियान के आनन-इंदुन तें अँखियान की बंदनवार तनी ।।४४।।

ओप = आभा । सियरानी = जुड़ानी, प्रसन्न हुई । घनसार = कपूर । उफनी = बढ़ी, उफनाई ।

---

* भाँग का मज़ा छोड़ तथा भगीरथ को गंगा देकर न तो उत्तमांग (शिर) में जटा रखते हैं, न शरीर में भस्म का खोज (पता) ।

† देव कवि कहता है कि शिव वियोगी नहीं हैं, क्योंकि वह अब योगी से संयोगी हो गए हैं, अथच शरीर में सर्प का भोग (संसर्ग) जो था, उसके स्थान पर चित्त प्रसन्न करनेवाली शय्या है ।

कवि ने इस छंद में प्रेम से जीवन में जो परिवर्तन होता है, उसका फल शिव-से महायोगी पर दिखलाया है ।

सीय के भाग के अच्छत अंकुर पुन्यनि के फल-फूल कढ़ाए ,
भूपन की मुख ओप मृगम्मद चंदन मंद हँसीन बढ़ाए ;
देव बिधीस के जान के ईस मुनीसन आसिस-मंत्र पढ़ाए ,
श्रीरघुनाथ के हाथन पै मृगनैननि नैन-सरोज चढ़ाए ॥ ४५ ॥

समाभेद रूपक है ।

अच्छत = विनाश न होनेवाला । बिधीस = ब्रह्मा तथा महादेव । ईस = प्रभु ; रामचंद्र से प्रयोजन है ।

सीता का भाग्य ही अक्षत है, पुण्यों के ही फल-फूल निकले हैं, राजाओं की मुख-प्रभा ही (जो पराजय के कारण काला हो गई है) कस्तूरी है । मंद हास्य चंदन है, तथा मृगनैनियों के नेत्र ही कमल हैं, जो भगवान् के हाथों पर चढ़े हैं (अर्थात् स्त्रियाँ उनके विजयी हाथों को देख रही हैं) । ब्रह्मा और महादेव के ईश (राम) समझे जाकर मुनीशों के द्वारा आशीर्वाद-मंत्र पढ़ाए गए ।

सुख को सदन सुत-बधू को बदन देखि ,
दसरथ दसौं दिसि सुजस बगारि कै ;
सुदिन दिनेस-कुल दिनमनिजू को देखियत,
दीप दीप दान दीपक उज्यारि कै ।

कवि राजा दशरथ के यश का वर्णन करता हुआ उनकी दान-शीलता का प्राधान्य प्रकट करता है । सीता की मुख-दिखरावनी के शुभ समय से संबंध है ।

दिनेस-कुल = सूर्यवंश । दिनमणि = सूर्य ; प्रयोजन दशरथ से है । दीप = (१) दीपक, (२) द्वीप । बारि कै = जल से । दुरोदर = शंख ।

साँचे देव दीनबंधु दीनता न राखी कहूँ,

आदर* उदार बसु बादर के वारि कै ;

मंदोदरी दरी में दुरयो है दौरि दारिद,

निकारि दियो उदर दुरोदर को फारि कै† ॥ ४६ ॥

(५)

प्रकृति-निरीक्षण

छपद छबीले छीव पीवत सदीव रस,

लंपट निपट प्रीति कपट ढरे परत ;

भंग भए मध्य अंग डुलत खुलत साँस,

मृदुल चरन चारु धरनि धरे परत ।

देव मधुकर हूक हूकत मधूक धोखे,

माधवी मधुर मधु लालच लरे परत ;

दुहु पर जैसे जलरुहु परसत, इहाँ

मुहु पर झाई परे पुहुप झरे परत ॥ ४७ ॥

यहाँ नायक से बहुत-सी नायिकाओं पर पृथक्-पृथक् प्रीति रखने का उपालंभ वर्णित है । छीव = उन्मत्त । पहले चरण में भ्रमर-रूपी नायक की कपट-भरी झूठी प्रीति का कथन है । दूसरे चरण में उसकी शारीरिक दशा का कथन आया है ।

मधूक (महुवा) के धोखे से मधुकर (मीठे नीबू) पर

---

* सत्कार, औदार्य तथा संपत्ति-रूपी बादलों के जल से ।

† दारिद (दरिद्र) दुरोदर के उदर को फारिकै निकारि दियो, दौरि (दौड़कर) मंदोदरी (छोटे पेटवाली) दरी में (उदररूपी गुफा में) दुरयो (छिपा) है ।

डुबकी लगाकर बैठता है, और मधुर माधवी (मद्य) तथा मधु (शहद) के लालच से लड़ा पड़ता है।

दुहु पर = दोनो पखनों से। जैसे दोनो पंखों से तुम कमल का स्पर्श करते हो, वैसे ही यहाँ महुवे के मुख पर तुम्हारी परछाईं पड़ते ही उसके फूल झड़े पड़ते हैं, अर्थात् जो भ्रमर कमल का लोभी है, वह यदि महुवे के पास जाय, तो न उसकी शोभा है, न महुवे की। सखी भ्रमर के व्याज से नायक को केवल पद्मिनी-नायिका के अनुकूल होने की शिक्षा दे रही है।

ग्रीषम द्वै पहरी मिस जोन्ह महाबिष ज्वालन सों परिबेठी,
देखत दूष पिये हू पियूष अहूष महूष मिली महुरेठी;
देव दुराएहु जोति सो होति अँगेठी से अंगनि आगि अँगेठी,
कातिक-राति जगी जम जोय जुठैल जठेरी सुजेठ की जेठी ॥४८॥

द्वै पहरी = दुपहरी = दो पहर। वियोग के कारण से जोन्हाई महाविष की ज्वालों से परिवेष्टित (ढकी हुई) समझ पड़ती है।

महूष या महोप भारद्वाज-पक्षी का नाम है। उसकी बोली की ध्वनि अहूष की-सी होती है। अतएव अहूष एक ध्वन्यात्मक शब्द है, जो भारद्वाज-पक्षी की कर्कश बोली प्रकट करता है। यह बोली महुरेठी (माहुर अर्थात् विष-पूर्ण) कही गई है। पद का प्रयोजन यह है कि नायिका को विरह-वश चाँदनी महोष की विष-पूर्ण ध्वनि से मिली हुई उसका अमृत-पान करने पर भी देखने में दुःखद है। वह चाँदनी दीप्ति छिपाने पर भी विरह-वश अँगीठी-से तप्त अंगों में दूसरी अँगेठी की अग्नि-सी होती है। विरह-वश नायिका को कार्त्तिक-चंद्र-ज्योत्स्ना-पूर्ण रात ऐसी बुरी लगती है, मानो वह जेठ मास की गरम रात से भी उष्णता में जेठी (अधिक) हो। वह रात जुठैल (जूठी, अशुचि),

जठेरी (अप्रिय, नटखट) तथा जम' जोय (यमराज की-सी स्त्री, प्राणाकर्षिणी) है ।

दूसरे पद में चाँदनी के साथ अमृत-पान का इसलिये कथन किया गया है कि चंद्रमा के सुधाधर होने से वह सुधाकर या सुधांशु भी है, जिससे चाँदनी के दर्शन से मानो उसका अमृत-पान होता है । नायिका को विरह-वश चाँदनी से कोई मज़ा आता नहीं, प्रत्युत चाँदनी रात में महूष की अहूष-ध्वनिवाली कर्कशता-मात्र उसके चित्त में सर्वोपरि बात रह जाती है ।

केते करे सुकपोत कपोतक पिंजर-पिंजर बीच बिबादनि*,
को गनै चातक चक्र चकोर कला पिक मोर मराल प्रबादनि† ;
बीन ज्यों बोलति बाल प्रबीन नबीन सुधा-रस-वाद सवादनि‡,
वारों सुकंठी के कंठ खुले§ कलकंठन के कलकंठ निनादनि ॥४६॥

नायिका की वाणी की प्रशंसा की गई है । बाद = संभाषण । वारों = निछावर करूँ । सुकंठी के = एक सुंदर तोता, जिसके गले में कंठी होती है । कलकंठन के = सुंदर गलेवालों (शब्द करने वालों) के ।

---

* छोटे-बड़े कबूतरों ने पिंजड़े-पिंजड़े में कितना ही विवाद किया (किंतु उस नायिका की वाणी की सरबरि वे न कर पाए) ।

† (उसकी वाणी के सामने) चातक (पपीहा), चक्र (चकई-चकवा) और चकोर (चंद्र को ताकनेवाला पक्षी) की कला तथा पिक (कोकिला), मयूर एवं मराल (हंस) की ध्वनियाँ गिनने योग्य नहीं हैं ।

‡ अमृत-रस का स्वाद तुच्छ है ।

§ तोते का कंठ खुला कहा जाने से उसके जवान होने का आशय है, क्योंकि यौवन-प्राप्त तोते की कंठी ख़ूब खिलती है ।

केसरि किंसुक औ' बरना* कचनारनि को रचना उर सूलो ,
सेवती देव गुलाब मलै† मिलि मालती मल्लि मलिंदनि हूलो ;
चंपक दाड़िम नूत महाउर पाँडर डार डरावनि फूलो ,
या मयमंत‡ बसंत मैं चाहत कंत चल्यो हमहीं किधौं भूली§ ॥५०॥

मल्लि = बेला । नूत = नूतन, नवीन । पाँडर = एक प्रकार की पीली चमेली । पाँडर स्वयं डरानेवाली नहीं है, किंतु विरह के कारण व्याकुलता प्रकट करने से डरानेवाली कही गई है । इस पद का अन्वय यों है—महानूत चंपक दाड़िम उर डरावनि पाँडर डार फूली ।

उर सों लगी ही बधू बिधुर अधर चूम ,
मधुर सुधान बातैं सुनिबे सुभाव को ;
बोलि उठीं कोकिला त्यों काकलिनु कलित
कलापिन की कूकैं कल कोमल बिराव की× ।

---

* पुष्प वृक्ष-विशेष ।

† मलै = मलय-पर्वत, जहाँ चंदन होता है । इसी से मलय को भी मलयज मानकर चंदन कहते हैं ।

‡ उन्मत्त ।

§ प्रयोजन यह है कि इतने कामोद्दीपक समय में पति कैसे जा सकता है, सो यद्यपि उसके जाने का विचार प्रकट हो चुका है, तथापि नायिका समझती है कि उसके यथार्थ मानने में वह स्वयं भूल करती होगी, क्योंकि वह सत्य नहीं होगा ।

× सुंदर मुलायम स्वर की कोकिला, मधुर तथा सुंदर मोरों की कूकैं बोल उठीं (आवाज़ करने लगीं) । काकली = सूक्ष्म मधुर स्फुट ध्वनि ।

आइ गईं झूकैं मंद मारुत की देव नव-
मल्लिका मिलित मल पदुम के दाव की ;
ऊखली सुबासु गृह अखिल खिलन लागीं,
पलिका के आस-पास कलिका गुलाब की ॥ ५१ ॥

प्रातःकाल का वर्णन है। कलित कलापिन = सुंदर मयूरों की। बिराव की = ऊँचे स्वर में बोली की। बिधुर = काँपता हुआ। मल = मकरंद। मिलित मल पदुम के दावकी = कमल-वन के मकरंद-सहित। ऊखली = उखरी = फैली।

स्याम के संग सदा हम डोलैं जहाँ पिक बोलैं, अलोगन गुंजैं,
लाहनि माह उछाहनि सों छहरैं जहँ पीरी पराग की पुंजैं ;
बेलिन मैं, रसकेलिन मैं, कवि देव कछू चित की गति लुंजैं,
कालिंदी-कूल महा अनुकूल ते फूलतीं मंजुल बंजुल कुंजैं ॥५२॥

लाहनि माह = मंगल से, अर्थात् आनंद-सहित। उछाहनि सों = उत्साह-सहित। बंजुल = अशोक-वृक्ष।

(६)

समीर

अरुन उदोत सकरन ह्वै अरुन नैन
तरुन-तरुन तन तूमत फिरत है*,
कुंज-कुंज केलि कै नवेली बाल बेलिन सों
नायक पवन बन भूमत फिरत है ;

* प्रातःकाल अरुण के उदय में होकर (निकलकर) (रात के जगे हुए) लाल नेत्रवाले प्रत्येक युवक का शरीर धुनता फिरता है, अर्थात् प्रातःकाल उनका अपनी प्यारियों से वियोग हो जाता है, जिससे सुखद पवन भी उनको दुखद हो पड़ता है।

अंब-कुल बकुल समीड़ि पीड़ि पाड़रनि
मल्लिकानि मीड़ि घन घूमत फिरत है* ;
दुमन-दुमन दल दूमत मधुप देव† ,
सुमन-सुमन मुख चूमत फिरत है ॥ ५३ ॥

अंब-कुल = आम-वृक्षों का समूह। पाड़रनि = पाँड़री (एक पुष्प)। दुमन = वृक्षों (द्रुमों) को। दूमत—यह शब्द 'दूमना'-क्रिया-पद से लिया गया है, धुनते हुए का प्रयोजन है। विरह-वेदना व्यंजित की गई है। सकरन = सकारे; प्रातःकाल। समीड़ि = सम्यक्-प्रकारेण मीड़ि (मलकर)। दूमत = हिलाता हुआ। यहाँ दूमत को देहलीदीपकन्यायेन द्रुमों तथा भ्रमर, दोनो पर आरोपित करके यह भी अर्थ कर सकते हैं कि वृक्षों तथा भ्रमरों, दोनो को पवन हिलाता है।

सजोगिन की तू हरै उर-पीर, बियोगिन के सचरे उर-पीर,
कली न खिलाइ करै मधु-पान, गलीन भरै मधुपान की भीर ;
नचै मिलि बेलि बधूनि अचै सुरदेव नचावति आधि अधीर,
तिहू गुन देखिए दोष-भरो अरे सीतल, संद, सुगंध समीर ॥५४॥

सचरै = बढ़ावे, उत्तेजित करे। मधुपान (मधुप) = भौंरों को। अचै = तप्त करके। आधि = मानसिक व्यथा।

---

* चमेली के फूलों को मलकर (उनकी सुगंध से) घना (होकर) घूमता फिरता है।

† भौंरों का देवता पवन। पवन के संसर्ग से भ्रमरों के प्रिय पुष्प प्रसन्न होते हैं, सो भ्रमर का पवन हितकर देवता हो सकता है।

(७)

चंद-चाँदनी

नगर निकेत रेत खेत सब सेत-सेत,
सखि के उदेत कछु देत न दिखाई है;
तारका* मुकुत-माल झिलिमिलि झालरनि,
बिमल बितान नभ आभा अधिकाई है।
सामोद प्रमोद ब्रज-बीथिन बिनोद देव
चहूँ कोद चाँदनी की चादरि बिछाई है;
राधा मधुमालतिहि माधव मधुप मिल
पालिक पुलिन झीनी परिमल झाई है॥ ५५॥

राधा और माधव के मिलन का वर्णन है। निकेत = घर। रेत = बालू। बितान = चाँदनी (चँदोवा)। सामोद = आमोद (आनंद)-सहित। पालिक=पलंग। पुलिन = रेतीला नदी का किनारा। परिमल = पराग।

राधा मधुमालती (फूल) है, जिसे भ्रमर रूपी माधव मिले हैं। पुलिन ही पलका है, तथा उस पर पराग ही हलका उजियाला है।

आस-पास पूरन प्रकास के पगार सूझैं,
बनन अगार डीठ गली ह्वै निबरतीं†;

---

* तारे।

† वनों, भवनों, गलियों में दृष्टि से निवृत्त होते हैं, अर्थात् नज़र में गुज़र जाते हैं। अगार = भवन।

पारावार पारद अपार दसौ दिसि बूड़ीं,
बिधु बरम्हंड उतरात बिधि बरते* ।
सारद† जुन्हाई जह्नु पूरन सरूप धाई,
जाई सुधा सिंधु नभ सेत गिरि बर ते‡ ;
उमड़ो परतु जोति मंडल अखंड सुधा,
मंडल मही में इंदु-मंडल बिबरते§ ॥ ५६ ॥

परम नवीन विचार ।

कातिक पून्यो कि राति ससी दिसि पूरब अंबर मैं जिय जान्यो,
चित्त भ्रम्यो पुमनिंदु मनिंदु फनिंदु उठ्यो भ्रम ही सों भुलान्यो ;
देव कछू बिसवास नहीं, सोइ पुंज प्रकास अकास मैं तान्यो,
रूप-सुधा अँखियान अँचै निहिचै मुख राधिका को पहिंचान्यो ॥ ५७ ॥

---

* उस प्रकाश में पारावार (समुद्र), पारा तथा अपार दसौ दिशाएँ डूब गईं, एवं चंद्रमा अथच ब्रह्मांड उसी में ब्रह्मा के बरदान से उतराते हैं । प्रयोजन यह है कि वह प्रकाश का पुंज अपार है ।

† श्वेत गिरिवर के सुधा-सिंधु से उत्पन्न जह्नु की शारदी जुन्हाई (गंगाजी को शरद् की ज्योत्स्ना कहा गया है) पूर्ण रूप से धाई । प्रयोजन यह है कि गंगा-रूपी ज्योत्स्ना भी उसी प्रकाश-पुंज से निकली है, जिस प्रकाश का अंश श्वेत गिरि पर सुधा-सरोवर के रूप में स्थित है ।

‡ कवि ने इस छंद में यह विचार लिखा है कि संसार में प्रकाश-पुंज सर्वत्र व्याप्त है, किंतु आकाश-रूपी पर्दा उसे पृथ्वी पर आने नहीं देता । उसी पर्दे में चंद्रमा एक छिद्र है, जिसमें से होकर वह प्रकाश-पुंज सुधा-मंडल के समान पृथ्वी पर उमड़ा पड़ता है ।

§ पाठांतर—"शारद जुन्हाई जह्नु जाई धार सहस ।"

पुमनिंदु = पूर्ण + इंदु = पूर्णेंदु = पुमनेंदु = (पूर्णिमा का चंद्रमा)। मनिंदु फनिंदु = चंद्रकांत-सी मणि धारण करनेवाला सर्प। अँचै = पान करके।

पहले राधिका का मुख देखकर भगवान् उसे पूर्व दिशि में उदित कार्त्तिकी पूर्णिमा का चंद्र समझे, किंतु जब मणि-मंडित केश-पाश उस चंद्र से मणि-युक्त सर्प की भाँति उठता हुआ दिखाई दिया, तब उनका चित्त भ्रम में पड़ा, और उसी भ्रम से भूल गया। जब वैसा ही प्रकाश-पुंज आकाश में भी पूर्ण चंद्र के कारण तना हुआ दिखाई दिया, तब कुछ विश्वास न पड़ा कि ये दो चंद्र कहाँ से आए। अनंतर आँखों से रूप-अमृत-सा पीकर उन्होंने निश्चय-पूर्वक राधिकाजी का मुख पहचाना।

फटिक सिलानि सों सुधारयो सुधा-मंदिर,
उदधि दधि को-सो अधिकाई उमगै अमंद ;
बाहेर ते भीतर लौ भीतिन देखैए देव,
दूध को-सो फेनु फैलो आँगन फरसबंद।
तारा-सी तरुनि तामैं ठाढ़ी झिलमिलि होति,
मोतिन की जोति मिली मल्लिका को मकरंद ;
आरसी-से अंबर मैं आभा-सी उज्यारी लगै,
प्यारी राधिका को प्रतिबिंब सो लगत चंद ॥ ५८॥

प्रतीप-अलंकार।

फटिक = स्फटिक, बिल्लौर।

(८)

विनोद

गूजरी ऊजरे जोबन को कछु मोल कहौ दधि को तब दैहौं,
देव इतो इतराहु नहीं, ई नहीं मृदु बोल न मोल बिकैहौं;
मोल कहा, अनमोल बिकाहुगी, ऐंचि जबै अधरा-रसु लैहौं,
कैसी कही फिरि तौ कहौ कान्ह अबै कछू हौंहू कका कि सौं कैहौं।

नायक—हे गूजरी, उज्ज्वल जोबन का कुछ मोल कहो, तब हम दधि देंगे (वापस करेंगे)। प्रयोजन यह है कि उन्होंने दहेड़ी छीन ली थी, जिसके फेरने का प्रश्न है।

नायिका—इतना मत इठलाओ। न तो इन मृदु बोलों से बिकूँगी, न मोल से।

नायक—मोल की बात ही क्या है, जब मैं तुम्हें खींचकर तुम्हारा अधर-रस लूँगा, तब तुम बिना मोल ही बिक जाओगी।

नायिका—हे कृष्ण, कैसा कहा, फिर तो कहो। काकाजी की शपथ खाकर कहती हूँ कि अभी मैं भी कुछ कहूँगी।

आइ खुभी*खिरकी में खरी खिन-ही-खिन खोन सखीन लखाहीं,
चाह भरी उचकै चित चौंकि चितै चतुराई उतै चित चाहीं;
बातन ही बहरावति मोंहि, बिमोहित गातन की परछाहीं,
ओड़ी किए उर ऐड़ती हौ भुज ऐंड़ि कहूँ उड़ि जैहौ तौ नाहीं ॥६०॥

खिन-ही-खिन = क्षण-क्षण में। खीन = क्षीण, दुर्बल। चितै चतुराई = चतुराई से देखकर। उतै चित चाही = उस तरफ़ चित्त ने चाहा। बहरावति = बहलाती है। गातन की परछाँही = श्याम के शरीर की छटा। ओड़ी किए = आड़ देकर। ऐड़ती हौ = ऐंड़ाती हो।

* गड़ी अर्थात् देर से खड़ी।

अंगन उघारौ जनि लंगर लगोई माँग-
मोती-लर टूटत लरकि आई लुरकी ;
देव कर जोरि कर अंचर को छोर गहि,
छाती मुठि छूटति न नीठि ठनि दुरकी।
आँसू दृग पूरि भ्रमपूर चकचूर ह्वै*,
कहति प्यारी दोऊ भुज दीने ओट उर की ;
मरी जाति लाजन अकाजन करैया दैया,
छाँड़ि दे अनोखे नाँह, बाँह जाति मुरकी॥ ६१॥

लंगर = नायक के लिये संबोधन, हे ढीठ। लरकि आई = लटक आई। लगोई माँग मोती = माँग में मोती लगे हुए हैं। लुरकी = माँग में लटकनेवाला मोती का ज़ेवर। ढरकी = भरनी, जुलाहों का एक औज़ार, जिससे वे लोग बाने का सूत फेकते हैं। छाती मुठि छूटति न नीठि ठनि ढरकी = आपकी मुठि (मूठ) कठिनता से भी छाती से नहीं छूटती; भरनी की तरह इधर-उधर आती-जाती है।

ठनि ढुरकी = ठनकर (कार्य में रत होकर) मानो ढरकी हो गई। प्रयोजन यह है कि भरनी के समान कार्य करती है।

रच्यो कच मौर सुमोर-पखा धरि काक-पखा मुख राखि अराल†,
धरी मुरली अधराधर लै मुरली सुर लीन ह्वै देव रसाल ;
पितंबर काछनी पीत पटी धरि बालम-बेष बनावति बाल,
बरोजन खोज निवारन को उर पैन्ही सरोजमई मृदु माल॥६२॥

---

* पूरे विभ्रम में चकनाचूर होकर।

† कुटिल।

नायिका नायक (कृष्ण) का वेश धारण करके बिनोद करती है। छंद के चतुर्थ चरण में मीलित अलंकार है।

कच = केश। काक-पखा = काक-पक्ष = कुल्लें।

(६)

पावस

सुनि कै धुनि चातक मोरनि की चहुँ ओरनि कोकिल कूकनि सों,
अनुराग-भरे हरि बागनि में सखि रागत राग अचूकनि सों ;
कबि देव घटा उनई जु नई बनभूमि भई दल दूकनि सों,
रँगराती हरी हहराती लता झुकि जाती समीर के झूकनि सों॥६३॥

पावस-ऋतु का वर्णन है।

अचूकनि सों = पटुता-सहित। उनई = उदित हुई। दूकनि = दो-एक। हहराती = ध्वन्यात्मक शब्द।

पावस प्रथम पिय ऐबे की अवधि सो जो,
आवत ही आवैं तो बुलाऊँ अति आदरनि* ;
नाहीं तो न हील होन दे री झील झाबरनि,
ग्रीषमहि राखु खाली भाखु खल खादरनि।
बीजुरी बरजु, कहु मेघ न गरजु,
इन गाजमारे मोर-मुख मोरि री निरादरनि;
कंठ रोकि कोकिलनि, चोच नोचि चातकनि,
दूरि करि दादुर, बिदा करि री बादरनि॥ ६४॥

---

* पहले ही पावस में प्रियतम के आने की अवधि थी। सो यदि पावस के आते ही वह भी आवें, तो पावस (वर्षा) को भारी आदर से बुलाऊँ। खादर खल इस कारण से कहे गए हैं कि इनके कारण बुख़ार बढ़ता है, तथा अन्य कष्ट होते हैं।

नायक की अनुपस्थिति के कारण नायिका पावस का निरादर करती है। बड़ा सबल छंद है।

ऐवे की अवधि = आगमन का नियत समय। हील = कीचड़। झाबर = दलदल। खादर = वह नीची ज़मीन, जिसमें वर्षा का पानी बहुत दिनों तक रुका रहता है। बरजु = रोक।

नाचत मोर, नचावत चातिक, गावत दादुर आरभटी* मैं,
कोकिल की किलकार सुने बिरही बपुरे बिष घूँटैं घटी मैं;
अंबर नील घनी घनमाल सु भूमि बनी बनमाल तटी मैं†,
साँवर पीत मिले झलकैं घन दामिनि से घन श्याम पटी मैं ॥६५॥

विरह उत्पन्न करनेवाले पदार्थों तथा कारणों का वर्षा के संबंध में वर्णन है। बपुरे = बेचारे, अनाथ। 'बराक' (सं०)-शब्द से बना है। पटी = पर्दा। घटी = छोटा घट (शरीर)।

उतै तौ सघन घन घिरि कै गगन, इतै
बन - उपबन बन बनक बनाए हैं;
तैसेई उलहि आए अंकुर हरित - पीत,
देव कहै बिबिध बटोहिन सुहाए हैं।
बोलैं इत मोर, उत गरजैं मधुर धुनि,
मानौ मैन-भूप जग जीति घर आए हैं;

---

* आरभटी एक वृत्ति है, जिसमें टवर्ग-पूर्ण, ओज की विशेषता रहती है। मेंढकों की टर्र-टर्र बोली में आरभटी-वृत्ति का उदाहरण कवि ने माना है।

† बनों की माला (बहुत वनों) के तट में भूमि सुंदरी बनी है। घने काले पर्दे में साँवले और पीले बादल बिजली-से झलक रहे हैं।

अंबर बिराजै बर, अंबरन छाए छिति,
पीरे, हरे, लाल, ये जवाहिर बिछाए हैं ॥६६॥

वर्षा में प्रकृति-वर्णन।

बनक = एक प्रकार का कपड़ा, जिसे साटन कहते हैं। उलहि = उग आए। अंबरन = मेघ। वर्षा का सादृश्य विजयी सैन-महीप से दिखलाया गया है।

आजु अभै सुघरी उघरी भ्रम* काज-निमित्त सुचित्त चलाकिन,
चाहत नाह चलो परदेस को नाहक नाह कहो अबला किन†;
देव सरोग उठी सगुनै कहि कामिनि दामिनि सोन-सलाकिन‡,
भूमि रही बनमालिनि§ भूमि पै घूमि रही घन-माल बलाकिन॥६७॥
सौंखे सिंधु सिंधुर से, बंधुर ज्यौं बिंध्य, गंध-
मादन के बंधु से गरज गुरवानि के;

---

* बाहर चलने का विचार ही भ्रम-काज है। उसके लिये पति का चित्त भले ही चला, किंतु वर्षा आ जाने से अच्छी घरी उघर आई, और गमन रुक गया।

† पति परदेश को चलना चाहता है, उससे अबला (नायिका) हे नाथ ! यह नाहक है, ऐसा भले ही कहे (पत्नी के मना करने पर भी पति परदेश जाना चाहता था, तब तक वर्षा के उमड़ आने से अच्छी घरी आ गई)।

‡ सोन-सलाकिन (स्वर्ण की-सी शलाका) दामिनि (बिजली) को सगुन कहकर सरोग कामिनी (वियोग के भय से रोग-पीड़ित नायिका) उठी (रोग-शय्या से आराम होकर उठ खड़ी हुई)।

§ बनमालवाली नायिका (वह नायिका, जो वन के फूलों की माल पहने है)।

झमकारे झूमत गगन घने घूमत,
पुकारे मुख चूमत पपीहा मोरवानि के।
नदी-नद सागर डगर मिलि गए देव,
डगर न सूझत नगर पुरवानि के;
भारे जल-धरनि अँध्यारे धरनी-धरनि
धाराधर धावत धुमारे धुरवानि के ॥६८॥

सिंधुर = हाथी। बंधुर = सुंदर तथा नम्र (मेघों के झुकने से उनको एवं उँचाई न पकड़ने से विंध्य को नम्र कहा है)।

गंधमादन = एक पर्वत का नाम। पुराणानुसार यह पर्वत इलावृत और भद्राश्वखंड के बीच में है। गुरवानि = भारी। झमकारे = झमाझम बरसनेवाले (बादल)। जलधरनि = मेघ। धरनी-धर = भूधर, पर्वत। धाराधर = मेघ। धुमारे = धूमिल, धुएँ के रंग के।

(१०)

हिंडोरा

आली झुलावति झूँकनि सों झुकि जाति कटी झननाति झकोरे,
चंचल अंचल की चपला, चलबेनी बड़ी सो गड़ी चित चोरे;
या बिधि झूलत देखि गयो तब ते कबि देव सनेह के जोरे,
झूलत है हियरा हरि को हिय माहँ तिहारे हरा के हिंडोरे ॥६९॥

झूँकनि = झोंकों से। झननाति = कटी में की किंकिनी शब्द करती है। झकोरे = झोंके के वेग से। चंचल अंचल की चपला = बिजली के समान फड़कता हुआ अंचल। शब्दार्थ स्पष्ट है कि यह चंचल अंचल है, या चपला। चलबेनी = हिलती हुई वेणी।

झुलति ना वह झूलनि बाल की, फूलनि-माल की लाल पटी की,
देव कहै लचकै कटि चंचल, चोरी दृगंचल चाल नटी की;

अंचल की फहरानि हिए रहि जानि पयोधर पीन तटी की,
किंकिनि की झननानि झुलावनि, झूकनि सों झुकि जानि कटी की।

लाल पटी = लाल रंग का कपड़ा। पीन तटी = पुष्ट किनारेदार।

झूलनिहारी अनोखी नई उनई रहतीं इत ही रँगराती,
मेह मैं ल्यावैं सु तैसियै संग की रंग-भरी चुनरी चुचुवाती*।
झूला चढ़े हरि साथ हहा करि देव झुलावति ही ते डराती†,
और हिंडोरे की डोरनि छाँड़ि खरे ससवाइ गरे लपटाती॥७१॥

ससवाइ = सीत्कार करके, डरकर।

(११)

बसंत और फाग

आइ बसंत लग्यो बर सावन नैनन ते सरिता उमहै री,
कौ लगि जीव छमावै छपा मैं छपाकर की छबि छाई रहै री;
चंदन सों छिरकैं छतिया अति आगि उठै उर कौन सहै री,
सीतल, मंद, सुगंध समीर बहै, दिन दूगुनो देह दहै री॥ ७२॥

उमहै री = उमगती है। छमावै = सहन करावै। छिरकैं = सींचें। बर सावन = श्रेष्ठ श्रावण। वसंत आकर अच्छा सावन लग गया, अर्थात् वसंत मानो सावन हो गया।

(हे सखि!) वसंत-ऋतु आते ही नैनों से ऐसा जल-प्रवाह हो चला है, मानो वह सावन है, और वह प्रवाह नदी होकर उमड़ता है।

केकी-कुल कोकिल अलापैं कल कंठ धुनि,
कोलाहल होत सुकपोत मयमंत को;

---

* चूनरि मेघ के कारण टपकती है, क्योंकि पानी बरस चुका है।
† झुलाती है, किंतु हृदय से डरती भी है।

फूले कमलन पर नाचत बिमल अलि,
कमला बिसाल मैं प्रकास रति-कंत को।
त्रिबिध समीर चलै, सजल सरीर देव,
सुखद निनाद बाद आनँद अनंत को;
भीतरे भवन बास रहै उपबन औ'
सिसिर निसि बास रहै बासर वसंत को* ॥ ७३ ॥

मयमंत = उन्मत्त (मद-युक्त) । कमला = विभूति । निनाद = शब्द । बाद = व्यर्थ । इस आनंद के सामने ब्रह्मानंद-पर्यंत व्यर्थ है ।

फूले अनारन पाँडर डारन, देखत देव महाडरु माँचैं,
माधुरी भौरन अंब के बौरन भौरन के गन मंत्र-से बाँचैं;
लागि उठैं बिरहागिनि की कचनारन बीच अचानक आँचैं,
साँचे हुँकारि पुकारि पिकी कहैं नाच बनैगी वसंत की पाँचैं ॥ ७४ ॥

फूलि उठो बृंदाबन, भूलि उठे खग, मृग
सूलि उठे, उर बिरहागि बगराई है;
गुंजरैं करत अलि-पुंज कुंज-कुंज धुनि,
मंजु पिक-पुंज नूत मंजुरी सुहाई है।
बाल बनमाल फूल-माल बिकसंत बिह-
संत मुखी ब्रज मैं बसत-ऋतु आई है;
नंद के नँदन ब्रजचंद को बदन देखे,
सदन - सदन देव मदन-दुहाई है ॥ ७५ ॥

* शिशिर निशि भीतरे भवन बास रहै औ' बासर बसंत उपबन बास रहै। प्रयोजन यह कि शिशिर की निशि में भवन की मुख्यता है, और वसंत के दिन में उपबन की।

भूलि उठे खग = पक्षीगण भूल गए हैं, अर्थात् इतना आहार-विहार का आधिक्य हुआ कि उनको दिशा-भ्रम भी होने लगा। मृग सूलि उठे उर आदि = हिरनों के हृदय में विरहाग्नि दहकने लगी, क्योंकि पतझड़ हो जाने के कारण उनकी एकत्र स्थिति नहीं रही।

सीतल, मंद, सुगंध खुलावति पौन डुलावति को न लची है,
नौल गुलाबहि कौल फुलावनि जोन-कुलावनि प्रेम पची है;
मालती, मल्लि, मलेज, लवंगनि, सेवती संग समूह सची है,
देव सुहागनि आजु के भागनि देखु री, बागनि फागु मची है ॥७६॥

प्रकृति में फाग का रूपक बँधा है।

नौल = नवल = नवीन। कौल (कौंल) = कमल। जोन-कुलावनि (जोन्ह + कुल + अवनि) = चाँदनी के समूह से युक्त पृथ्वी; यहाँ चाँदनी के फैलने तथा गुलचाँदनी-जाति के पुष्पों के फूलने से प्रयोजन है। सची = संचित।

माधुरी झौरनि फूलनि भौंरनि बौरनि-बौरनि बेलि बची है,
केसरि किंसु कुसुंभ कुरौ किरवार कनैरनि रंग रची है;
फूले अनारनि चंपक-डारनि लै कचनारनि नेह तची है,
कोकिल रागनि नूत परागनि देखु री, बागनि फागु मची है ॥७७॥

प्राकृतिक शोभा में फाग का चित्र।

झौरनि = गुच्छों में। बौरनि = (१) बौराए हुए, (२) मंजरियों में। कुरौ (कुरैया) = एक वृक्ष जो जंगलों में होता है, और जिसकी पत्तियाँ लंबी और लहरदार होती हैं। इसमें लंबे और सुगंधित फूल लगते हैं, जो सफ़ेद, लाल, पीले और काले या नीले रंग के होते हैं। इन फूलों के गुण वैद्यक-शास्त्र में पृथक्-पृथक् माने गए हैं। किरवार = अमलतास।

लोग-लुगाइन होरी लगाइ मिलामिली चारु न मेटत ही बन्यौ ,
देवजू चंदन-चूर कपूर लिलारन लै लै लपेटत ही बन्यौ ;
ये इहि औसर आए इहाँ समुहाइ हियो न समेटत ही बन्यौ ,
कीनी अनाकनि औ मुख मोरि पै जोरि भुजा भटू भेंटत ही बन्यौ॥७८॥

गुप्ता नायिका है। चारु = चार, चाल, रस्म। समुहाई = सामने आने पर।

आँगी कसैं, उकसैं कुच ऊँचे, हँसैं-हुलसैं फुँदीन की फूँदैं,
चंदन ओट करै पिय जोट, पै अंचल ओट दृगंचल मूँदैं ;
देवजू कुंकुम केसरि की मुख-बारिज बीच बिराजती बूँदैं,
बाढ़्यो बिनोद गुलाल लै गोदनि मोद-भरी चहुँ कोदनि कूँदैं॥७९॥

ओट = तिलक, आड़। मुख-बारिज = मुखारविंद। जोट = सहचर नायिका के। हुलसैं = आनंदित होती हैं। फुँदीन की फूँदैं हुलसैं = अँगिया या नीवी की गाँठें खुलने को चाहती हैं। कोदनि = ओर, पक्ष।

कछु और उपाय करै जनि री इतने दुख क्यों सुख सों भरिबो*,
फिरि अंतक सो बिन कंत बसंत के आवत जीवत ही जरिबो† ;
बन बौरत बौरी ह्वै जाउँगी देव सुनै धुनि कोकिल को डरिबो,
जब डोलिहैं औरैं अबीर भरीं सु कहा कहि बीर कहा करिबो‡ ।८०॥

---

* हे सखी ! कुछ और उपाय कर न (अर्थात् अवश्य कर), क्योंकि इतने दुःख किस प्रकार सुख से पूरे होंगे ?

† एक वसंत विरह में बीत चुका है, किंतु उसके यमराज-समान फिरकर (दूसरी बार) आते ही जीते-जी जल जाऊँगी।

‡ जब और सखियाँ अबीर से भरकर डोलेंगी (अर्थात् होलिकोत्सव आवेगा), तब क्या करूँगी, सो हे सखी, कह।

मरिबी = पूरा करूँगी, व्यतीत करूँगी। अंतक = यम। और = दूसरी (सखियाँ)। बीर = हे सखी!

(१२)

रास

फूँकि-फूँकि मंत्र मुरली के मुख जंत्र कीन्हो
प्रेम परतंत्र लोक लीक ते डुलाई है;
तजे पति मात तात गात न सँभारे कुल-
बधू अधरात बन भूमिन भुलाई है।
नाध्यो जो फनिंद इंद्रजालिक गोपाल गुन,
गाड़रू* सिंगार रूपकला अकुलाई है;
लीलि-लीलि लाज दृग मीलि-मीलि काढ़ी कान्ह,
कीलि-कीलि ब्यालिनी-सी ग्वालिनी बुलाई है ॥८१॥

कवि कृष्ण को इंद्रजाली बनाकर ब्यालिनी-गोपियों का आकर्षित हो आना वर्णन करता है।

कीलि-कीलि = विवश कर-करके।

घोर तरु नीजन बिपिन तरुनीजन ह्वै
निकसीं निसंक निसि आतुर अतंक मैं;
गनैं न कलंक मृदु-लंकनि मयंक-मुखी
पंकज-पगन धाईं भागि निसि पंक मैं।
भूषननि भूलि पैन्हे उलटे दुकूल देव,
खुले भुजमूल प्रतिकूल बिधि बंक मैं;

* सर्प का पकड़नेवाला या उसका विष उतारनेवाला। ऐसे मंत्र में गरुड़ की हाँक दी जाती है, इसी से उस मंत्र-विद्या का नाम गारुड़ि है।

चूल्हे चढ़े छाँड़े उफनात दूध-भाँड़े, उन
पूत छाँड़े अंक, पति छाँड़े परजंक मैं ।। ८२ ।।

आतुर = जल्दी में, अधीर । अतंक (आतंक) = प्रताप, रोब । लंकनि = कटिवाली ।

निर्जन वन में होती हुई, चरण-कमलों से कीचड़ मँझाती हुई रात में दौड़कर गईं । प्रतिकूल बिधि बंक मैं = टेढ़ी एवं उलटी रीति से ।

इस छंद में विलास तथा विभ्रम हावों की अच्छी बहार है । विभ्रम में उलटे भूषणादि का विषय होता है, और विलास हाव में गमनादि में विशेषता ।

गोकुल नरिंद्र इंद्रजाल सो जुटाय ब्रज-
बालनि लुटाय कै छुटाय लाज-दामु सों ;
बिज्जुलि-से बास अंग उज्जल अकास करि
बिबिध बिलास रस हास अभिरामु सों* ।
जान्यो नहीं जात, पहिंचान्यो न बिलात, रास-
मंडल ते स्याम, भासमंडल ते धामु सो ;

---

* सुंदर रस और हँसी के साथ अनेक प्रकार के खेल करके बिजली के समान कपड़े और उजले आकाश-सा शरीर करके । प्रयोजन यह है कि भगवान् सवस्त्र ग़ायब हो गए । वसन बिजली-से बिला गए, तथा शरीर उजला आकाश-सा हो गया, अर्थात् सब कहीं है, और पकड़ा न जा सकने से कहीं भी नहीं । भगवान् ने अनेक रूप रखकर रास रचा था । वे सब रूप आकाशवत् हो गए, अर्थात् सब कहीं होकर भी कहीं न रहे । उजले आकाश कहने का यह अभिप्राय है कि उसमें घनादि की ओट भी न थी । इसी प्रकार भगवान् खुले में ग़ायब हो गए ।

बाहनि के जोट काम कंचन के कोट गयो
ओट ह्वै दमोदर दुरोदर को दामु सो ॥ ८३ ॥

जुराय = इकट्ठी करके । दामु = रस्सी (लाज का बंधन)। भासमंडल ते घामु सो = जैसे सूर्य की धूप देखते-देखते लुप्त हो जाती है, वही दशा भगवान् की हुई । दुरोदर को दामु = डपोर शंख द्वारा वादा किया हुआ धन ।

कालिंदी के कूलनि तरुनि तरु-मूलनि
निहारि हरि अंग के दुकूलनि उघेरतीं;
मल्ली* मलै† मालती नेवारी जाती‡ जूही देव,
अंबकुल, बकुल§ कदंबन मैं हेरतीं।
ताल दै-दै तालनि तमालनि × मिलत फिरैं,
बोलि-बोलि बाल भुज भेंटि भट भेरतीं;
पुलकि-पुलकि पुलिननि + मैं पुलोमजा ÷-सी
बिलपि बिलोकि कान्ह-कान्ह करि टेरतीं ॥ ८४ ॥

भट भेरतीं = धक्का खाती फिरती हैं ।
रास के अंतर्गत वियोग का बहुत अच्छा वर्णन है ।

---

* मल्लिका, बेला ।
† मलयज, चंदन ।
‡ चमेली ।
§ मौलसिरी ।
× कृष्ण खदिर (काले खैर का दरख़्त) ।
+ किनारों ।
÷ शची (पुलोमा से उत्पन्न) ।

(१३)
कुछ राग-रागिनी

कोयल अलापो कुल नाचत कलापी, ताल
बोलत बिसाल बोल चातक सुनायो है;
दामिनीन बीच उपबीत गुन पीतपट,
मोतिन को हार बग-पाँति मनभायो है।
फूले मुख लोयन कमल कमलाकर,
मुकुट रबि जोति ताप बरषि सिरायो है*;
मोहै धुनि सरगमैं† बरषा पहर चौथे
मेघ तनस्याम घनस्याम बनि आयो है ॥ ८५ ॥

मेघ-राग का घनस्याम (श्रीकृष्ण) से रूपक बाँधा गया है। राग का ही वर्णन मुख्य है। उपबीत गुन = यज्ञोपवीत (जनेऊ) के डोरे। बग-पाँति = बगलों की पंक्ति। कमलाकर = सरोवर। सिरायो है = शांत किया है।

छंद में अलापना, नाचना, ताल देना आदि भगवान् से संबद्ध हैं, तथा कोकिल, मयूर, पपीहा आदि मेघ से।

अंब के बौरन बीरैं बिराजतीं, मौरसिरी सो धरी सिरमौरी‡,
इंदु-से सुंदर गोल कपोलन, बोल सुनाय करी पिक बौरी;

---

* फूले लोचन कमल हैं, मुख सरोवर, मुकुट सूर्य, ज्योति ताप और बरसना सिराना (चित्तों को सियराना, ठंडा करना) हैं।

† ध नी र ग म = धैवत, निषाद, रिषभ, गांधार, मध्यम, ये सब स्वर मेघ राग में आते हैं। स से सहित का प्रयोजन लेना चाहिए। यह राग खाडव-जाति का है। धुनि सरगम से भगवान् तथा राग, दोनो श्रोता को मोहित करते हैं।

‡ मौलसिरी ही शिर पर मुकुट है।

सेत दुकूलनि साँमरी बाम की पैनी चितौनि चुभै चित दौरी,
पूरन पुन्य सु राग मैं प्योधनी* गाइए सीत निसागम गौरी॥८६॥

बीरें = बीड़े। पिक बौरी = कोयल को पागल करना अर्थात् उसका बहुत बोलना। साँमरी (श्यामा) = यौवनमध्या।

गौरी रागिनी का वर्णन है। छंद में उसके सामान, रूप, गाने के समय आदि का कथन है।

साँवरी सुंदरि पीत दुकूल सु फूले रसाल की मूल लसंती,
लीन्हे रसाल की मंजरी हाथ सुरंगित आँगो हिये हुलसंती;
पूरन प्रेम सुरंग मैं प्योधनो† संग-ही-संग बिलोल हसंती,
है उत हैउत ही दिन माँझ समो करि राख्यो बसंत बसंती॥८७॥

बसंती रागिनी का वर्णन है।

लसंती = शोभा देनेवाली। हुलसंती = प्रसन्नता से भरी हुई। हैउत (हैवत) = हेमंत-ऋतु।

(१४)

उपमा-रूपकादि

पीक-भरी पलकैं झलकैं, अलकैं जु गड़ीं सु लसैं भुज खोज की‡,
छाय रही छबि छैल की छाती मैं छाप बनी कहुँ ओछे उरोज की;

---

* ऋषभ, गांधार, मध्यम, पंचम, धैवत और निषाद स्वरों से गौरी गाई जाती है। गौरी मालकौस की रागिनी (भार्या) है। उपर्युक्त स्वरों का कथन "राग मैं प्यो धनी" सूत्र से निकलता है।

† स, रि, ग, म, ध, नी। संपूर्ण जाति।

‡ नायक की पलकों में किसी अन्य नायिका के चुंबन से पीक लगी हुई है, जो झलक रही है, अथच नायक के भुज में उसकी अलकें गड़ी हुई हैं, जो खोज के योग्य हैं, अर्थात् दृष्टव्य हैं।

ताहि चितै बड़री अँखियान ते ती की चितौनि चली अति ओज की,
बालम ओर बिलोकिकै बाल दई मनो चोट सनाल सरोज की*।

खंडिता नायिका का वर्णन है। अलकैं = बालों की लटें। ती की = स्त्री की। सनाल = डंठल-सहित। कुच-छाप बनने से गाढ़ालिंगन तथा कुचों की कठोरता के भाव प्रकट होते हैं।

गोरी गरबीली उठी ऊँघत उघारे अंग,
देव पट नील कटि लपटी कपट-सी;
भानु की किरन उदैसानु कंदरा ते छूटी,
सोम-छबि करी तम-तोम पै दपट-सी।
सोने की सराँग स्याम पेटी ते लपेटी कटि,
पन्ना ते निकसि पुखराज की झपट-सी†;
नील घन धूम पै तड़ित-दुति घूमि-घूमि
धूँधरि सों धाई दाव पावक लपट-सी॥ ८६॥

नायिका की सूर्योदय (प्रकाश) से उपमा दी गई है। उदैसानु = उदयाचल का शिखर। तोम = समूह। सराँग = शलाका (रेखा खींचने की एक सीधी लकड़ी)। तड़ित = बिजली। दाव = दौरहा। धूँधरि = अँधेरा।

---

* पति की ओर नायिका ने देखकर ही मानो कमल-नाल-समेत कमल उसके मारा, अर्थात् उसका धिक्कार किया। नेत्र कमल हैं, तथा निगाह ने जो दूरी पार की है, वही मानो कमल-नाल-सी रेखा बन गई है। नवीन उत्प्रेक्षा है।

† पन्ना हरा होता है, और पुखराज पीला। इसी कारण श्याम पेटी से पीत शरीर की छवि की ऐसी उपमा कही गई है।

नील पट को कपट इस कारण से कहा है कि कपट का रंग भी काला होता है। प्रयोजन यह है कि नील वस्त्र श्वेत शरीर को ढके हुए है, सो मानो द्रष्टाओं से कपट करता है। कुछ अंग खुला है, और कुछ नील वस्त्र से आच्छादित है; इसी से कहा गया है कि मानो उदयाचल से सूर्य की किरण ने निकलकर अच्छी शोभा द्वारा तम-समूह को दपट (डाँट) दिया।

परिहास कियो हरि देव सुबाम को वा मुख बैन नच्यो नट ज्यों,
करि तीखो कटाच्छ कृपान भयो मन पूरन रोष भर्‌यो भट ज्यों;
लपिटाय गही षट-पाटी करौंट लै मान-महोदधि को तट ज्यों,
कटु बोल सुने पटुता मुख को पट दै पलटी उलट्यो पट ज्यों॥६०॥

मुग्धा मानिनी नायिका का वर्णन है। परिहास = हँसी, ठट्ठा। कृपान = खड्ग। षट (खट्वा) = खाट।

नायक के परिहास करने से नायिका के मुख में वचन नट के समान नाचने लगे, अर्थात् बहुत प्रकार के उपालंभ-पूर्ण वाक्य उसने कहे। यह मुग्धात्व का सूचक भाव है। उसके कटाक्ष तलवार-से टेढ़े हो गए, और मन पूर्ण क्रुद्ध योद्धा की भाँति रोष-पूर्ण हुआ। उसने कर-वट लेकर मान-रूपी भारी समुद्र के कूल की भाँति पलंग (खाट) की पट्टी लिपटकर पकड़ ली, किंतु नायक के मुख-चातुर्य-प्रदर्शक (हँसी-भरे) कटु बैन सुनकर (मान-मोचन हो जाने से) नायिका (मुग्धात्व के कारण) पट की आड़ देकर उलटे कपड़े की भाँति शीघ्र पलट गई, अर्थात् नायक की ओर हो गई। मुख की पटुता से नायक ने जो कटु बोल कहे थे, वे विनय-गर्भित थे, जिनसे मान-मोचन हुआ। यहाँ यह संदेह उठ सकता है कि जब गुरु मान था, तब केवल विनय से उसका मोचन कैसे हो गया? उत्तर यह है कि यहाँ मध्यम मान का कथन है, गुरु मान का नहीं। नायिका मान-महोदधि के

तट तक गई थी, किंतु महोदधि में उसने पैर नहीं रक्खा था, अर्थात् उसका मध्यम मान गुरु मान के निकट तक गया था, किंतु गुरु मान हुआ न था। उलटा पट लोग शीघ्रता से पलट देते हैं। इस छंद में नच्यो नट ज्यों और पलटी उलट्यो पट ज्यों में धर्म गुप्त है। उपेक्षाएँ बहुत श्रेष्ठ हैं, क्योंकि वे अर्थ को ख़ूब समर्थ करती हैं।

राधिका-सी सुर-सिद्ध-सुता नर-नाग-सुता कवि देव न भू पर ,
चंद करौं मुख देखि निछावरि केहरि कोटि लटो कटि हू पर ;
काम-कमान हू को भृकुटीन पै, मीन मृगीन हू को दृग दू पर ,
बारौंरी कंचन-कंज-कली पिकबैनी के ओछे उरोजन ऊपर ॥६१॥

प्रतीप-अलंकार है। लटो = ख़राब हुआ।

देव न देखति हौं दुति दूसरी, देखे हैं जा दिन ते ब्रज-भूप मैं ,
पूरि रही री वही धुनि कानन, आनन आन न ओप अनूप मैं ;
ए आँखियाँ सखिया न हमारियै जाय मिली जलबुंद ज्यौं कूप मैं ,
कोटि उपाय न पाइए फेरि, समाय गईं रँगराय के रूप मैं॥६२॥

प्रेम का वर्णन है। न हमारियै = केवल हमारी नहीं हैं, वरन् दूसरे की भी हैं, क्योंकि उसी से मिल गईं।

दूध सुधा मधु सिंधु गँभीर ते, हीर जुपै नग-भीर लै आवैं* ;

---

* दुग्ध, अमृत तथा मधु (मद्य या शहद) के समुद्रों को नग-भीर (पर्वत-पुंज) द्वारा मंथन करके यदि कोई पुरुष उनके सार पदार्थ ले आवे। जब साधारण समुद्र के मंथन से चौदह रत्न निकले, तब उपर्युक्त समुद्रों से अवश्य ही उत्तम पदार्थ निकलेंगे, यह अभिप्राय है। दूध से सफ़ेदी आई, अमृत से मीठापन और मधु (मद्य) से सुर्ख़ी। दाँतों के लिये सफ़ेदी है, और ओठों के लिये मिठाई तथा सुर्ख़ी।

बाल प्रबाल पला मिलिकै मनि-मानिक मोतिन जोति जगावै* ;
लै रजनीपति बीच बिरामनि, दामिनि-दीप समीप दिखावै ,
जो निज न्यारी उज्यारी करै तब प्यारी के दंतन की दुति पावै† ।

नायिका के दाँतों की कांति का वर्णन है । संभावन-अलंकार है ।

रूप के मंदिर लो मुख मैं मनि-दीपक-से दृग ह्वै अनुकूले‡ ,
दर्पन में मनि, मीन सलील, सुधाधर नील सरोज-से फूले§ ;

---

* नवीन मूँगों के पल्ले में मणि-माणिक्य तथा मोती मिलकर जो ज्योति निकलती है, उसे यदि कोई जाग्रत् करे, अर्थात् प्रकट करे । ओष्ठों की लाली के लिये मूँगों तथा माणिक्य का विचार आया है, और दंतों के लिये मणि तथा मोतियों का कथन हुआ है ।

† चंद्रमा (मुख) के बीच विराम-चिह्नों (ओठों) को लेकर उन्हीं के निकट ऐसी बिजली की दीप्ति दिखलावे, जिससे केवल उजियालापन पृथक् किया गया हो (अर्थात् चकाचौंध करनेवाली चमक उसमें न हो), तो नायिका के दंतों की शोभा का सादृश्य मिल सकता है । ओठों का रूप विराम-चिह्नों के समान है, और मुख की कांति चंद्रमा के समान है ।

‡ तेरा मुख सौंदर्य का घर है, जिसमें नेत्र मणि के दीपक-से प्रसन्न हैं ।

§ वे नेत्र आईना में मणि के समान दीप्तिमान् हैं, जल में मछली के समान चंचल तथा चंद्रमा में नीले कमल-से फूले हैं । यहाँ आईना, जल और चंद्रमा मुख के स्थान पर हैं, तथा मणि, मीन और नील कमल नेत्र के लिये आए हैं ।

देवजू सूरमुखी मृदु फूल के भीतर भौंर मनौ भ्रम भूले,
अंक मयंकज के दल पंकज, पंकज में मनो पंकज फूले* ॥६४॥

नायिका के रूप (नेत्रों) का वर्णन है।

सूरमुखी = सूरजमुखी नाम का फूल। पंकज = कमल; एक जगह मुख से तथा दूसरी जगह आँखों से अभिप्राय है।

घूँघट खुलत अबै ऊलटु ह्वै जैहै देव,
उद्धत मनोज जग युद्ध जूटि परैगो;
ऐसी न सुरोक सिख को कहै अलोक बात,
लोक तिहुँ लोक की लुनाई लूटि परैगो† ।
दैयन दुराव मुख नतरु तरैयन को
मंडलहु मटकि चटाकि टूटि परैगो‡ ;
तो चितै सकोचि सोचि मोचि मृदु मूरछि कै,
छोर ते छपाकरु छता-सो छूटि परैगो§ ॥ ६५ ॥

---

* मानो मयंकज (बुध) के अंक (गोदी) में कमल-दल-से हैं (मुख के लिये बुध का कथन है, तथा नेत्रों के लिये कमल-दल का), तथा पंकज (मुख) में पंकज (नेत्र) फूले हैं।

† ऐसी शिखा (दीप्ति) देवलोक में भी नहीं (अलौकिक दीप्ति) है, लोकोत्तर बात कौन कह सकता है ? सारा संसार (देखते ही) तीनो लोकों की सुंदरता लूटने लग जायगा।

‡ टेढ़ा होकर चटाका टूट पड़ेगा। जो वस्तु टूटने को होती है, वह पहले टेढ़ी होकर तब टूटती है।

§ तेरी ओर देखकर चंद्रमा संकुचित होकर, सोच करके, मोचि (लचककर) कुछ मूर्च्छित होकर अपनी सीमा से छाता की भाँति छूट पड़ेगा।

नायिका के मुख की प्रशंसा है। प्रतीपालंकार की मुख्यता है। उद्धत मनोज = काम से उन्मत्त। सुरोक (सुर+ओक) = देव-लोक। दैयन = दैव के लिये। छोर तै = सीमा से (आकाश से)। छता = छाता।

खंजन मीन मृगीन की छीनी दृगंचल चंचलता निमिखा की,
देव मयंक के अंक की पंक निसंक लै कज्जल-लीक लिखा की;
कान्ह बसी अँखियान विषै विसफूरति बीस बिसै बिसिखा की,
दीपति मैन-महीप लिखाई समीप सिखा गहि दीप-सिखा की ॥६६॥

आँखों ने निमिष, खंजन (खँचा), मछली तथा मृगियों के नेत्रों की चंचलता छीन ली। देव कवि कहता है, चंद्रमा के अंक (गोदी) का कीचड़ (कालिमा) बेख़ौफ़ लेकर आँखों में काजल की रेखा लिखते रहे। बेडर इसलिये कहा गया है कि पंक लगने से भी कुरूप होने का भय न हुआ। 'लिखा की' बार-बार कर्म करने का सूचक वाक्यांश है। उधर कज्जल भी नित्य ही लगाया जाता है। हे कान्ह! आँखों के बिषे (आँखों में) बीसो बिस्वे बाण की तीव्रता बस गई है, तथा दीप-शिखा की शिखा निकट रखकर नेत्रों में राजा कामदेव की दीप्ति (ज्योति) लिखाई गई है।

कोयन ज्योति चहूँ चपला सुर-चाप सुभ्रू रुचि कज्जल कादौ,
बुंद बड़े बरसैं अँसुवा हिरदै न बसै निरदै पति जादौ;
देव समीर नहीं टुनिए धुनिए सुनिए कलकंठ निनादौ*,
तारे खुले न घिरी बरुनी घन नैन भए दोउ सावन-भादौ ॥६७॥

---

* कवि कहता है कि वर्षा का पवन संसार को नहीं धुनता (कँपाता या ध्वनि पूर्ण करता), वरन् सोहावने कंठ का शब्द सुन पड़ता है।

नायिका के नैनों के लिये वर्षा-ऋतु का रूपक बाँधा गया है। कोयन = आँखों के किनारे (कोया शब्द से बना है)। सुभ्रू = सुंदर भौंहें (सुभ्रू)। कादौ = कीचड़ (काँदो)। जादौ = यादव। तारे = नक्षत्र तथा आँखों की पुतरी। हिरदै न बसै = हृदय (पर) नहीं लगा हुआ है, अर्थात् वियोग की दशा है।

कंज-सों आनन खंजन-सों दृग या मन रंजन भूलैं न वोऊ *,
तामरसौ नलिनौ सरसौ अलि होइ नहीं तब सो चित सोऊ† ;
पूरन इंदु मनोज सरो चित ते बिसरो उसरो उ न दोऊ‡ ,

---

* इस मन में कमल-से मुख का तथा खँचा-से नेत्रों का क्या रंजन (शोभा वृद्धि) होता है? क्या वे दोनो (कमल तथा खंजन) मुख तथा नेत्रों के आगे भूल नहीं जाते?

† हे अलि (भ्रमर), यदि तुम तामरस (कमल) तथा नलिनी (कुमुदिनी) दोनो से सरसौ (रस मानो, प्रसन्न होओ), तो तुम्हारा वह चित्त भी वही न होगा (अर्थात् जो चित्त केवल कमल से प्रसन्न था, वह कमल और कुमुदिनी दोनो से प्रसन्न होने से वही-का-वही नहीं रहेगा, प्रत्युत उसकी गुणग्राहकता में क्षति पड़ जायगी)। प्रयोजन यह है कि यदि नायक का चित्त आनन तथा नेत्र के बराबर कंज तथा खंजन को मानै, तो उसका चित्त वैसा अनवधानता-पूर्ण माना जायगा, जैसा उस भ्रमर का, जो कमल और कुमुदिनी से समान प्रीति करे।

‡ पूर्ण चंद्र सरो (समाप्त हुआ, बीत गया) (और मुख की बराबरी न पाकर) चित्त से बिसरो तथा मनोज (कामदेव) (उसकी बराबरी न कर सकने से) उसरो (चित्त से हट गया) उ (वे) दोनो (उपमेय के योग्य) नहीं हैं।

देवजू ओप किधौं अपमान अरे उपमान करौ कबि कोऊ॥९८॥

ऐपन की ओप इंदु कुंदन की आभा चंपा
केतकी को गाभा पोत जोतिन सों जटियत ;
जगर-मगर होत सहज जवाहिर-से ,
अति ही उज्यारे जब नैसुक१ उबटियत ।
वैसे ही सुभग सुकुमार अंग सुंदरी के
लालन तिहारे या सनेह खरे लटियत ;
देव तेबर२ गोरी के बिलात गात बात लगे ,
ज्यों-ज्यों सोरे पानी पीरे पान से पलटियत† ॥ ९९ ॥

(१) थोड़ा । (२) ते अब । ऐपन = चावल और हल्दी बाँटकर जो अवलेपन बनाया जाता है । गाभा = अंतर्भाग । बिलात गात = शरीर लुप्त-सा होता जाता है, अर्थात् नायिका कृश होती जाती है । लटियत = कृश होती है (लटा = दुर्बल) । उबटियत = उबटन लगाते हैं ।

---

* इन उपमानों से वर्ण्य का ओप है कि अपमान (दीप्ति देने के स्थान पर ये उपमान उपमा न माने जाने से उसका निरादर करेंगे, क्योंकि हीनोपमा का मामला हो जायगा) । इससे कोई कवि ठीक उपमान का खोज करे, अथवा कोई कवि उपमा न दे ।

† पीले पान अगर ठंडे पानी में पलटे जायँ, तो वे सड़ जाते हैं, और यदि गरम पानी में पलटे जायँ, तो ठीक रहते हैं । छंद में विरह का वर्णन है । प्रयोजन यह दिखलाया गया है कि जैसे पीले पान ठंडे पानी से सुधरने के स्थान पर बिगड़ते हैं, वैसे ही विरह के कारण नायिका उद्दीपन के उपचारों से शोभा प्राप्त करने के स्थान पर कृश होती जाती है । उपमा बहुत अच्छी है ।

करि कोरि कला उलटैं पलटैं पल ही पल ज्यौं मृग बागरि के,
बहु ताको बिलास बढ़ै चित-बाँस पै देव सरूप उजागरि के* ;
गति बंक निसंक ही नाच करैं गुर डोरि गहे गुन-आगरि के† ,
तब नेह लग्यो नटनागर सों अब नैन भए नटनागरि के॥१००॥

बालिका के नेत्रों का नट से रूपक बाँधा गया है। बागरि=जाल। गुर=वह साधन अथवा क्रिया, जिससे कोई काम तुरंत हो जाय।

उमगत आवत सुधा-जल-जलधि पल,
घरी उघरत मुख अमिय मयूख सो‡ ;
देव दुहूँ बैस मिलि रूप अधिकायो, मधु
मेलि दधि दूधहि मिलायो रस ऊख सो§ ।

---

* उस उजियाले रूपवाली के नेत्रों का चित्त-रूपी बाँस पर नट की भाँति कला करने से उसका विलास बहुत बढ़ता है।

† उस गुणागरी के नैन गुर-रूपी डोरि पकड़े हुए, टेढ़ी चाल से, निडर नाच करते हैं।

‡ एक पल भी घूँघट से मुख-चंद्र की किरण खुलते ही उसी घरी (समय) अमृत के जल का समुद्र उमड़ता आता है। समुद्र पूरे चंद्र के उदय होने से उमड़ता है, किंतु यहाँ सुधा-समुद्र मयूख (किरण) से ही उमड़ पड़ता है।

§ दुहूँ बैस=बाल्यावस्था और युवावस्था, इन दोनों का मिलान। वय-संधि। मधु तारुण्य-व्यंजक है, तथा दधि-दूध बाल्यावस्था की शुद्धता प्रकट करते हैं। दधि दूध में शहद तथा ऊख का-सा रस मिला हुआ है।

छाई छबि छहरि लुनाई की लहरि लह-
रान्यो रस-मूल ह्वै रसाल सुर-रूख-सो* ;
पोवत ही जात दिन-राति तिन तोरि-तोरि,
खिन-खिन सखिन की आँखिन पिऊख-सो† ॥१०१॥

नायिका की शोभा का कथन है ।

धार मैं धाइ धसीं निरधार ह्वै, जाय फँसीं उकसीं न अबेरी ,
री अँगराइ गिरीं गहिरी गहि फेरे फिरीं न घिरीं नहिं घेरी ;
देव कछू अपनो बसु ना रसु लालच लाल चितै भईं चेरी ,
बेगिही बूड़ि गईं पँखियाँ अँखियाँ मधु की मखियाँ भईं मेरी॥१०२॥

नायक के रूप से मोहित हुई नायिका का वर्णन है । धार = यहाँ मधु-प्रवाह (प्रेम-प्रवाह) से मतलब है । निरधार = निराधार = बिना सहारे के ।

समाभेद रूपक है ।

बरुनी बघंबर औ' गूदरी पलक दोऊ ,
कोये लाल बसन भगोहैं भेष रखियाँ ;
बूड़ी जल ही मैं दिन-यामिनिहूँ जागी भौंहैं ,
धूम सिर छायो बिरहागिनि बिलखियाँ ।
आँसू जो फटिक माल लाल डोरे सेली पैन्हि
भई हैं अकेली तजीं सेली संग सखियाँ ;

---

* रस का मूल (मुख्यांश) कल्पवृक्ष-सा रसाल (रस का घर, रस-पूर्ण) होकर लहराया (हवा के झोंकों से डालें हिलीं) ।

† नायक सखियों की आँखों से (श्रवण-दर्शन द्वारा) क्षण-क्षण तिन तोड़-तोड़कर (कुदृष्टि बराना) अमृत-सा पान करता जाता है ।

दीजिए दरस देव, लीजिए सँयोगिनि कै,
योगिनि ह्वै बैठीं यै बियोगिनि की अँखियाँ ॥ १०३ ॥

कवि ने नायिका के विरह का रूपक योगियों की दशा से बाँधा है।
गूदरी = पुराने वस्त्रों में चारो ओर से सीवन डालकर जो वस्त्र ओढ़ने के लायक़ बनाया जाता है। कथरी। कोये = आँखों के कोने। सेल्ही = वह माला, जो योगी लोग धारण करते हैं।

कुल की-सी करनी कुलीन का-सी कोमलता,
सील की-सी संपति सुसील कुल-कामिनी;
दान को-सो आदरु उदारताई सूर की-सी,
गुनो की लुनाई गुनमंती गजगामिनी।
ग्रीषम को सलिल, सिसिर को-सो घाम देव,
हेँउँत हसंती जलदागम की दामिनी;
पून्यो को-सो चंद्रमा, प्रभात को-सो सूरज,
सरद को-सो बासरु, बसंत की-सी जामिनी॥ १०४ ॥

इस छंद में उपमाओं की अच्छी बहार है।

(१५)

शाब्दिक सामंजस्य

काननि कोननि कूदि फिरैं करि सौतिन के उर खेत की खूँदनि,
देवजू दौरि मिले ठगि ज्यौं मृग जे न फँदे फँदवार* के फूँदनि†;

---

* बहेलिया, फंदा लगानेवाला।

† फंदों से। जो मृग बहेलिए के फंदों में नहीं फँसे थे, वे भी ठगे-से दौड़कर लट से मिल गए। प्रयोजन यह कि लटों की सुंदरता से अरसज्ञ भी मोहित हो गए।

घूँघट के घटकी नटिकी* छुटी लटकी लटकी गुन गूँदनि,
केहू कहूँ न छुटैं† बिछुटैं‡ बिचरैं न चुरैं§ निचुरैं जल बूँदनि॥१०५॥

लट का वर्णन है।

गूँदनि = कुचलना। वटकी = बीच में रहनेवाली। लटकी = लटकती हुई। गूँदनि = गुत्थी, गुड़ी, गाँठ।

दूलहै सोहाग दिन तूल है तिहारे, तिन
तू लहै, तिहारे सो अयान ही की भूल है;
भूल है न भाग को, प्रवाह सो दुकूल है,
दुकूल है उज्यारो, देव प्यारो अनुकूल है।
कूल है नदी को, प्रतिकूल है गुमान री,
अहू लहै सु तौन जौन जोबन अहूल है;
हूल है हिये मैं, पलहू लहै न चैन री,
निहारु पल दूलहै, बिहारु पल दू लहै॥ १०६॥

तिहारे दूलह को (तेरा) सोहाग दिन के तुल्य (समुज्ज्वल) है, तिनको तू लह (प्राप्त कर), तेरे में अनजानपने ही की भूल है, भाग्य की भूल नहीं है। प्रवाह से ही दुकूल (दो किनारेवाली नदी होती) है (अर्थात् जब प्रेम प्रस्तुत है, तब किन्हीं बातों की शंका

---

* नहीं रुकी।
† न छूटती है।
‡ न हटती है।
§ नहीं छिपती है।

करके उसका अभाव मानना अनुचित है), तेरा प्रिय पति अनुकूल (केवल तुझमें अनुरक्त) है, (जिससे) तेरे दोनो कुल उजियाले हैं। गर्व अनुचित है, जो अकूल यौवन (अनिंद्य बढ़ती जवानी) नदी को कूल है, सो अजू (अब भी) लहै (प्राप्त कर)। (प्रयोजन यह है कि अनिंदित यौवन नदी का किनारा है, अर्थात् स्थिर नहीं रहता है। उसे प्राप्त कर, अर्थात् उससे आनंद ले।) (तेरे दूलह के) हृदय में (तेरी रुखाई से) हूल (दर्द) है, उसे एक पल भी चैन नहीं मिलती, एक पल-भर दूलह को देख, दो पल-भर विहार प्राप्त कर । उत्तमा सखी की मानवती नायिका को शिक्षा है।

आई बरसाने ते, बुलाई वृषभानु-सुता,
निरखि प्रभान प्रभा भानु की अथै गई;
चक-चकवान को चुकाए चक चोटन सों,
चकित चकोर चकचौंधी-सों चकै गई।
नंदजू के नंदजू के नैनन अनंदमयी,
नंदजू के मंदिरन चंदमयी छै गई;
कंजन कलिनमयी, कुंजन अलिनमयी
गोकुल की गलिन नलिनमयी कै गई॥ १०७॥

बरसाने = राधिका की जन्मभूमि का गाँव । अथै गई = अस्त हो गई । चुकाए = भुला दिए । चक-चकवान = चक्रवाकी और चक्रवाक (चकई और चकवा) । चक-चोटन = नैन-सैन (चक = चक्षु)। चकै गई = छका गई, चकित कर गई । नंदजू के नंदजू = (नंद-पुत्र) कृष्णजी। छै गई = पूरित हो गई, छा गई । नलिनमयी कै गई = कमलमयी रास्ता बना गई । यथा तुलसीदासजी ने

कहा है—"जहँ बिलोकि मृग-शावक-नैनी, जनु तहँ बरसि कमल-सित-श्रैनी।"

यह भी कहा जा सकता है कि रास्तों में कमलमुखी सखियाँ भर गईं, जिससे मानो रास्ते ही कमलमय हो गए।

श्रंत रुकै नहिं श्रंतरु कै मिलि श्रंतरु कै सु निरंतरु धारै*,
ऊपर चाहि न ऊपर वा हित ऊपर बाहेर की गति चारै† ;
बातन हारति बात न हारति हारति जीभ न बातन हारै‡,
देव रँगी सुरत्यो सुरत्यो मनु देवर की सुरत्यो न बिसारै§ ॥१०८॥

परकीया नायिका है। उपपति से प्रेमाधिक्य का वर्णन है।

---

* (उपपति से) श्रंतर करके वह अलग नहीं रुकती है, और मिलकर जब श्रंतर करती है (जैसा कि उपपति से प्रेम करने में स्वाभाविक है, क्योंकि उपपति से मिलन थोड़ी देर ही को मौक़ा निकालकर होता है), तब (स्मरण में) उसे निरंतर धारण करती है।

† ऊपर (दिखलाने में) चाहि (उपपति को) नहीं (चाहती), बरन ऊपर वा (पति) से हित है, और युक्ति-पूर्वक ऊपर बाहरवाली गति में ही चलती है (दिखलाने को पति से ही प्रेम करती है)।

‡ उस (उपपति की) ओर हारती है (मन विवश होकर भी उसकी ओर जाता है), किंतु बातों में उससे नहीं हारती है। (बातों में प्रेम प्रकट नहीं करती है, अर्थात् विवश होकर कर्मों से तो उससे प्रेम प्रकट करना ही पड़ता है, किंतु बातों में नहीं करती है।) बातें करते-करते जिह्वा थक जाती है, किंतु बातें नहीं चुकतीं।

§ देव कहता है कि वह देवर की सूरत और सुरति दोनो में रंजित है, तथा उसका स्मरण भी मन से नहीं भुलाती।

ी
रे-
ोन
को
के
ोन
-से
ोन
।
रूप

में पड़ने से सोने की चाह एँचों में हुई।

दिनांक	सदस्य संख्या	दिनांक	सदस्य संख्या

कमल-
वाँ भर
है,
ीं ;
है,
॥१०८॥
न है।

, और
स्वाभा-
नेकाल-
है।
हती),
रवाली
है)।
होकर
ो है।
ों से
नहीं
ं नहीं,
ों में
रंजित है, तथा उसका स्मरण भी मन से नहीं भुलाती।

अंबकुल बकुल* कदंब मल्ली मालती
सलैजन† को मींजिकै गुलाबन की गली है ;
को गनै अलप तरु‡ जो सों, जो कलपतरु
तासों बिकलप क्यों अलप मतिअली है ।
चित जाके चाय चढ़ि चंपक चपायो कोन,
मोचि सुख सोच है सकुचि चुप चली है§ ;
कंचन बिचारे रुचि पंचन में पाई देव
चंपाबरनी के गरे पर्‌यो चंपकली है× ॥१०६॥

बिकलप = विकल्प = विह्वल, उद्विग्न, व्याकुल, संशय-युक्त।

सखी का कथन है कि हे भ्रमर ! तू अल्पमति होकर ऐसी पारि-

---

* मौलसिरी, केसर ।

† मलयज, चंदन ।

‡ छोटा दरख़्त या ख़राब दरख़्त । उन छोटे पुष्ट वृक्षों को कौन गिन सकता है, जिनसे तू (अलि) अनुकूल है ।

§ जिसके चित्त ने उत्साह धारण करके चंपे के फूल को कोने में चपा दिया (कांति-हीन कर दिया, अर्थात् उसके रंग के आगे चंपे का रंग फीका पड़ गया), किंतु जो चंपे को कांति-हीन करने के कारण शोक एवं संकोच-पूर्ण होकर, सुख छोड़ चुपके-से चल दी । प्रयोजन यह है कि अपनी कांति से चंपे को द्युति-हीन करने से उसे गर्व अथवा प्रसन्नता न हुई, वरन् उलटे खेद हुआ । नायिका को चंपे की पराजय से दुःख हुआ है ।

× उस चंपकवर्णवाली नायिका के गले में चंपकली के रूप में पड़ने से सोने की चाह पंचों में हुई ।

जात (रूपी सुंदरी) से क्यों विमुख होता है, जब तूने उससे हीन-तर अंबकुल, बकुल आदि को पसंद किया ही है ?

(१६)

संक्षिप्त गुण

कीच के बीच रटैं चुरियाँ कुल-सो उमड़ी तुलसी बन लूनो ,
देव सिढ़ी जमुना सिढ़ियै चढ़ि दीन्हो मनोरथ को हम चूनो ;
बीच खगै खग कंटक ह्वै सुतौ कंटक ई नहिं आवत ऊनो ,
पापनचाव चितै चित की गति देहहु के दुख मैं सुख दूनो ॥११०॥

इस छंद के विषय में देवजी ने स्वयं यह दोहा लिखा है—

सकल लच्छना-भेद बर और व्यंजना-भेद ,
तातपर्य प्रगटत तहाँ दुख के सुख सुख खेद ।

इस छंद के देव ने लक्षणा-व्यंजना के सकल भेदों के संकर उदाहरण में दिया है । इसका शब्दार्थ लेने से अर्थ न बनेगा, क्योंकि स्वयं कवि ने इसे आध्यात्मिक अर्थ में लिखा है ।

संसार मानो कीच है (क्योंकि उसमें बुराई बहुत है), जिसमें दुर्वासनाएँ (चूड़ी से दुर्वासनाएँ व्यंजित की गई हैं) प्रबला (रहती) हैं, तथा कुल के समान उमड़ी हुई तुलसी (सुवासनाओं) का गहन वन कटा पड़ा है । देव कवि कहता है कि यमुना जो स्वर्ग की सीढ़ी है, उस पर (घाट की) सीढ़ियों से चढ़कर मैंने मनोरथों को चूना दे दिया (चुनौती दी, ललकार दिया) । इतना करने पर भी बीच में खग (जीवात्मा) कंटक होकर खगता (चुभता) है, और वह कंटक ही कम किया नहीं होता (सांसारिक बखेड़े छोड़े नहीं छूटते) । जब चित्त की गति पर ध्यान देता हूँ, तब उसमें पापों का चोप पाता हूँ, किंतु जब तपादि दैहिक कष्टों पर विचार करता हूँ, तब अंत

में उस दुःख में दूना सुख देख पड़ता है, क्योंकि उनसे मुक्ति प्राप्त होती है, जो वास्तविक सुख है। खग के उपर्युक्त अर्थ में जीवात्मा शुद्ध निर्विकार आत्मा के लिये कंटक माना गया है। यह भी कहा जा सकता है कि बीच में खग के साथ खग कंटक है, अर्थात् परमात्मा के साथ जीवात्मा कंटक-रूपी है। "यथा द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते। तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति" (मुंडकोपनिषत्)। दो पक्षी संयोगी मित्र एक वृक्ष पर स्थित हैं। उनमें एक पीपल को स्वाद से खाता है, न खाता हुआ दूसरा प्रकाशमान् है। यहाँ खानेवाला पक्षी जीवात्मा है, और न खानेवाला परमात्मा। इसी भाव को कवि ने तीसरे चरण में कुछ-कुछ व्यंजित किया है। इस छंद में लक्षणा और व्यंजना के सब उदाहरण निकलते हैं। यह देव की रचना में संक्षिप्त गुण का अच्छा उदाहरण है।

'तुलसी बन लूनो' में उपादान लक्षणा है, क्योंकि वन आप-से-आप नहीं कटा है, वरन् उसे किसी ने काटा है। 'रटैं चुरिया' में लक्षण लक्षणा है, क्योंकि चुरियाँ नहीं रटतीं, वरन् उनके हिलने से शब्द सुन पड़ता है। 'यमुना सिढ़ियै चढ़ि' में शुद्ध सारोपा लक्षणा है, क्योंकि समता के कारण यमुनाजी सीढ़ी कही गई हैं। कीच को संसार कहना शुद्ध साध्यवसान लक्षणा है, क्योंकि समता के कारण संसार का नाम न लिया जाकर वह कीच ही कहा गया है। 'खग कंटक ह्वै खगै' में गुण देखकर खग कंटक कहा गया है, सो गौणी सारोपा लक्षणा है। गुणों के कारण दुर्वासना को चूड़ी और सुवासना को तुलसी कहना गौणी साध्यवसान के उदाहरण हैं। मनोरथ को चूनो (चुनौती) देना रूढ़ि लक्षणा का उदाहरण है, और ऊपर जो अन्य छ भेद दिखलाए गए हैं, वे प्रयोजनवती के हैं। देव ने गौणी लक्षणा को मीलित कहा है।

कीच के बीच चुरियों के रटने से संसार में दुर्वासनाओं का बंध जो दिखलाया गया है, वह अगूढ़ व्यंजना का उदाहरण है। 'देह हू के दुख में सुख दूनो' यह वाक्य गूढ़ व्यंजना का उदाहरण है। पूरे छंद में आध्यात्मिक भावों का प्रकटीकरण व्यंग्य द्वारा हुआ है। तात्पर्य यह कि सांसारिक सुख में वास्तविक दुःख तथा सांसारिक दुख में वास्तविक सुख है।

अन्य मूल-मंत्र

"समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नोऽनीशया शोचति मुह्यमानः ;
जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीशमस्यमहिमानमिति वीतशोकः।
यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णं कर्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम्,
तदा विद्वान्पुण्यपापे विधूय निरंजनः परमं साम्यमुपैति।"
(मुंडकोपनिषत्)

निरंजन = निर्विकार।

पीतम बेष बिलास बिसेख सबिभ्रम भौंहनि जोहनि जोऊ,
रूप के भार धरे लघु भूषन औ' बिपरीति हँसै किन कोऊ ;
मैं रसरास हँसी रिस हू रस देवजू दूख सुखौ सम होऊ,
तोहि भटू बनि आवत हैं रस भाव सुभाव मैं हाव दसोऊ ॥१११॥

इस छंद में दसो हावों के उदाहरण दिए गए हैं। संक्षिप्त गुण की यहाँ प्रधानता है।

"होहिं सँयोग सिंगार मैं दंपति के तन आय—
चेष्टा जे बहु भाँति की ते कहिए दस हाय।"

(१) लीला-हाव पति के भूषण, वसनादि पत्नी द्वारा धारण करने से होता है। इस छंद में भी नायिका द्वारा पति का वेश धारण करने में लीला-हाव आया। (२) बिलास-हाव गमनादि

में कुछ विशेषता से होता है। विशेष विलास में विलास-हाव मिला। (३) लघुभूषण से विच्छित्ति-हाव हुआ। (४) विपरीत भूषण से विभ्रम-हाव आया। (५) 'भै रसरास हँसी रिस ह्वै रस' में कई भाव मिलने से किलकिंचित्-हाव प्राप्त हुआ। (६) सुख को दुख के समान मानने में कुट्टमित-हाव प्रकट है। (७) भौंहों द्वारा देखने में भविष्य में भी दरस-कामना प्रबल होने के कारण मोट्टायत-हाव हुआ। (८) रिस से पति का अनादर व्यंजित है, जिससे बिब्बोक-हाव आया। (९) रूप का भार नायिका पर है, अर्थात् रूप ही उसका पूर्ण आभरण है, जिससे आभरण-बाहुल्य का विचार आने से ललित-हाव निकला। (१०) 'भै हँसिरास' में रास के रस में भय लगा रहने के कारण उसमें अपूर्णता का अभिप्राय व्यंजित हुआ, जिससे विहित-हाव आया।

छंद का अर्थ सुगम है। तृतीय चरण में भय इस कारण है कि कोई विहार-क्रीड़ा देख न ले। रस, रास और हँसी विलास-क्रीड़ा में स्वाभाविक हैं। रिस मान के कारण हुई, और उसके पीछे मान-मोचन से फिर से रस हो गया। नायिका विलास-क्रीड़ा में इतनी प्रसन्न है कि उसके लिये तत्संबंधी दुःख और सुख प्रायः सम हो रहे हैं। दुःख का आभास प्रकट में 'नाहीं' आदि कहने से होता है, और सुख प्रकट विलास-कामना से।

चतुर्थ चरण में 'भटू'-शब्द 'बधू' का अन्य रूप है, और स्त्री के लिये एक आदर-सूचक संबोधन है।

बैरागिनि कीधौं अनुरागिनि सोहागिनि तू,
देव बड़भागिनि लजाति औ' लरति क्यों;

सोवति जगति अरसाति हरखाति अन-
खाति बिलखाति दुख मानति डरति क्यों।
चौंकति चकति उचकति औ' बकति बिथ-
कति औ' थकति ध्यान धीरज धरति क्यों;
मोहति मुरति सतराति इतराति साह-
चरज सराहि आहचरज मरति क्यों ॥ ११२॥

हरखाति = हर्षित होती है। अनखाति = क्रोध करती है। यह 'अनखाना'-शब्द से बना है। सतराति = अप्रसन्न होती है।

इस कवित्त में तैंतीस संचारी भावों के उदाहरण सूक्ष्म रूप से दिए गए हैं। इसकी टीका स्वयं देवजी ने 'शब्द-रसायन' में यों लिखी है—

बैरागिनि निर्बेद उग्रता है अनुरागिनि;
गर्ब सोहागिनि जानि भाग मदते बड़भागिनि।
लज्जा लजति अमर्ष लरति सोवति सु नींद लहि;
बोध जगति आलस्य अलस हर्षति सु हर्ष गहि।
अनखाब असूया ग्लानि श्रम बिलख दुखित दुख दीनता;
संका डराति चौंकति त्रसति चकित अपस्मृत लीनता ॥१॥

उचकि चपल आवेग ब्याधि सों बिथकि सु व्रीड़ति;
जड़ता थकित सु ध्यान चित्त सुमिरन धरि धीरति।
मोह मोहि अवहित्थ मुरति सतराति उग्रगति;
इतरैबो उन्माद साहचर्यं सराह मति।
अरु आहचर्य बहुतर्क करि मरन संभ्र मूरछि परति;
कहि देव देव तैंतीस हू संचारिन तिय संचरति ॥२॥

बिमल ह्वै मलिन ससंक बंक सलज
सिथिल दीन सालस सचिंत सँभरति है;
मद उनमाद धीर चपल अमर्ख हर्ख,
नींद जाग्र स्वपन बितर्क बिसुरति है।
ब्याधि गर्ब्ब उग्र उतकंठा दुख आवेग,
अचल बच खोट सबै जानति डरति है;
मोहति मुरति आँसू स्वेद थंभ पुलक,
बिबर्न स्वरभंग कंपि मूरछि परति है ॥ ११३ ॥

इस छंद में विविध भावों का फल शरीर पर कथित होकर संचारी भावों की मुख्यता है। वियोग शृंगार का कथन है। सालस = आलस्य-सहित। अमर्ख (अमरख; अमर्ष) = क्रोध। बितर्क = विचार। बच खोट = बुरे वचन। बिबर्न = रूपांतर।

नीचे को निहारत नगीचे नैन अधर
दुबीचे दव्यो स्यामा अरुनाभा अटकन को;
नील मनि भाग ह्वै पदुमराग ह्वै कै,
पुखराग ह्वै रहत बिध्यो छ्वै निकट कन को।
देवजू हँसत दुति दंतन मुकुत जोति,
बिमल मुकत हीरा लाल गटकन को;
थिरकि-थिरकि थिरु थाने पर तान तोरि,
बाने बदलत नट मोती लटकन को ॥ ११४ ॥

लटकन के मोती का वर्णन है। इस छंद में मीलित अलंकार की बहार है। अरुनाभा (अरुण + आभा) = लाल छटा; लटकन में यह लाल रंग अधरों से प्राप्त है। स्यामा = काला रंग; यह रंग

आँखों की पुतलियों से आया है। पद्मराग = माणिक या लाल-नामक रत्न। पुखराग (पुष्पराग) = एक प्रकार का रत्न, जो प्रायः पीला होता है। लटकन के मोती में यह पीलापन कंचन-तन या स्वर्ण से प्राप्त है। कन = सोने का कण। बाने = वेश (भेष)।

बानर बीर बसाए* अटा रँग† मंदिर मैं सुक सार्‍यो चिरैया,
भोर लौं ऊखिल भोर अथायन‡ द्वार न कोऊ किवार भिरैया;
कौलौं घिरे घर मैं रहौं देव§ बछा बिछुरे कहौ कौन घिरैया×,
फूले न बाग+ समूले न मूले÷ ऊ सूले खरे उर फूले फिरैया=।

इस छंद में संक्षिप्त गुप्त का कवि ने अच्छा समावेश किया है।

(१७)

रूप तथा नख-शिख

फलि-फलि फूलि-फूलि फैलि-फैलि झुकि-झुकि,
झपकि-झपकि आई कुंजै चहुँ कोद ते;
हिलि-मिलि हेलिन कै केलिन करन गईं
बेलिन बिलोकि बधू ब्रज की बिनोद ते।

---

* भूत गुप्ता।
† लक्षिता।
‡ मुदिता अथवा स्वयंदूती।
§ कुलटा।
× भविष्य गुप्ता।
+ प्रथम अनुसेना।
÷ वचनविदग्धा।
= दूसरी अनुसेना।

नंदजू की पौरि पर ठाढ़े हैं रसिक देव,
मोहनजू मोहि लीनी मोहनी के मोद ते ;
गाथन* सुनत भूलीं साथन के, फूल गिरे
हाथन के हाथन ते, गोदन के गोद ते ॥ ११६ ॥

नायक के रूप से सखियों का मुग्ध होना वर्णित है ।

माथे मनोहर मौर लसै, पहिरे हिय मैं गहिरे गुँज्हारनि ,
कुंडल मंडित गोल कपोल, सुधा-सम बोल बिलोल निहारनि ;
सोहति त्यौं कटि पीत पटी, मन मोहति मंद महा पग धारनि,
सुंदर नंदकुमार के ऊपर वारिए कोटिकु मार-कुमारनि ॥११७॥

श्रीकृष्ण के कुमार-स्वरूप का वर्णन है । बिलोल = चंचल । मार-कुमारनि = कामदेव के लड़कों को ।

आओ ओट रावटी झरोखा झाँकि देखौ देव,
देखिबे को दाउँ फेरि दूज द्यौस नाहिनै ;
लहलहे अंग रंगमहल के अंगन में
ठाढ़ी वह बाल लाल पग न उपाहिनै† ।
लोने मुख लचनि, नचनि नैन-कोरनि की
उरति न और ठौर सुरति सराहिनै‡ ;
बाम कर बार हार अंचल सम्हारै, करै
कैयो छंद कंदुक उछारै कर दाहिनै ॥ ११८ ॥

---

* क़िस्सा ।

† पैर में जूता नहीं है (उपाहन = जूता) ।

‡ सुरति को सराहना दूसरे ठौर नहीं उरती (औरती, ध्यान में आती) ।

दूती नायक को नायिका का दर्शन कराती है । नायिका के उत्तम चित्र का वर्णन है ।

रावटी = तंबू, क़नात । दाउँ = मौक़ा (दाँव) । छंद = खेल ।

पूरन प्रेम सुधा बसुधा बसुधारमई बसुधार सु रेखी*,
जीवन या व्रज जीवन को व्रज जीवन जीवनमूरि बिसेखो† ;
तू परमावधि रूप रमा परमानंद को परमानँद पेखी‡ ,
नेह-भरी नख ते सिख देव सुदेह धरे ससि-मूरति देखी ॥११६॥

रेखी = रेखा खींची हुई, गिनी हुई, गराय । बसुधा = पृथ्वी । जीवन = पानी (जीवनं भुवनं जलमित्यमरः) ।

सरद के बारिद मैं इंदु सो लसत देव,
सुंदर बदन चाँदनो सो चारु चीर है ;
सोधो सुधा-बिंदु मकरंद - सो मुकुत-माल
लपिटी मनोज§ तरु - मंजरी सरीर है ।

---

* वसु (ज्योति की) धारा-युक्त रत्नों की धारा सुंदर प्रकार से गण्य हुई । प्रयोजन यह है कि नायिका ज्योति-पूर्ण रत्न-समूह-सी है ।

† तू व्रज के जीवधारियों की जीव है, अथच जल-रूपी व्रज की जीवनमूरि (जीवन की उत्पत्ति का हेतु) विशेष रूप से है ।

‡ तू लक्ष्मी के सौंदर्य की अतःपर सीमा है, अथच परमानंद को भी प्रमाण देने(हद बाँधने)वाली तुझे हमने देखा ।

§ चित्त प्रसन्न करनेवाली ।

सील-भरी सलज सलोनी मृदु मुसुकानि
राजै राजहंसगति गुनन गहीर है;
घेरी चहूँ ओरन ते भौंरन की भीर, तामैं
ये री चितचोरनि चकोरनि की भीर है* ॥ १२० ॥

सोधो = शुद्ध। गहीर = गंभीर।

कातिक† की राति पूनो इंदु परकास दूनो
आस-पास‡ पावस-अमावस लगी रहै;
ग्रीषम§ की उषमा मयूष मान कसे, मुख+
देखे सनमुख निसि सिसिर लगी रहै।
बरसै× जोन्हाई सुधा बसुधा सहस धार
कुमुदिनि सूखै ज्यौं-ज्यौं जामिनि जगी रहै;
दोऊ÷ पर उज्जल बिराजै हंस हंसी देव
स्याम रंग रंगी जगमगि उमगी रहै ॥ १२१ ॥

---

* प्रयोजन यह है कि सौरभ के लोभ से भौंरे तथा चंद्रमा के भ्रम से चकोर नायिका को घेर रहे हैं।

† शरद्।

‡ मुखमंडल के इधर-उधर बालों के समूह से मेघाच्छादित वर्षा-ऋतु का मतलब है।

§ नायिका के मान करने से ग्रीष्म-ऋतु का अभिप्राय है।

+ नायिका के मुदित मुख-चंद से शिशिर का अभिप्राय है।

× हेमंत-ऋतु; इस ऋतु में कुमुदिनी ज्यों-ज्यों रात्रि बढ़ती है, त्यों-त्यों सूखती है।

÷ वसंत-ऋतु; इस ऋतु में दोनो पक्षों में आनंद रहता है। हंसी-रूपी नायिका के दोनो पर श्याम (हंस, नायक) के रंग में रँगे होने पर भी उज्ज्वल हैं।

रूप में षड् ऋतु ।

लगी रहै = गड़ी रहै । ऊषमा = गरमी । मयूष = किरणें । मान कसे = मान-युक्त होने से । जामिनि जगी रहै = रात्रि जगती है, अर्थात् बढ़ती है । उमगी रहै = उल्लसित बनी रहे । कुमुदिनी = (कुमुद), गदूल, कोकाबेल्ली ; पद्मिनी (नायिका) । पर = पक्ष ।

नायिका के स्वरूप एवं भावों की ऋतुओं से समानता दी गई है ।

आई हुती अन्हवावन नायनि सोधो लिए कर सूधे सुभायनि ,
कंचुकी छोरी उतै उबटैबे को ईंगुर-से अँग की सुखदायनि ;
देव सरूप की रासि निहारति पायँ ते सीस लौं सीस ते पायनि,
ह्वै रही ठौर ही ठाढ़ी ठगी-सी, हँसै कर ठोढ़ी धरे ठकुरायनि॥१२२॥

सोधो = सुगंधित द्रव्य (शोधन-शब्द से निकला है, जिसका अर्थ स्वच्छ करना है) । उबटैबे को = उबटन करने को ।

घाँघरो घनेरो लाँबी लटैं लटै लाँक पर,
काँकरेजी सारी खुली अधखुली टाड़ वह ;
गोरी गज-गौनी दिन दूनी दुति होनी देव,
लागति सलोनी गुरु लोगन के लाड़ वह ।
चंचल चितौनि चित चुभी चितचोरवारी,
मोरवारी बेसरि औ' केसरि की आड़ वह ;
हँसि-हँसि बोलन की गोरे-गोरे गोलन की,
कोमल कपोलन की जी में गड़ी गाड़ वह ॥१२३॥

लटै = छोटा, पतले । लाँक = कटि (लंक) । टाड़ = टड़िया ; भुजाओं पर पहनने का भूषण । मोरवारी बेसरि = मोर (आभूषण) युक्त नथ । मोर एक गहना है, जो मयूर की आकृति का सोने में मोती पिरोकर बनता है ।

घेरदार घाँघरा है, तथा क्षीण कटि तक लंबी जटें लटकी हुई हैं। काँकरेजी (पतले कपड़े तथा काले रंग की) सारी से टँड़िया कुछ खुली तथा कुछ अधखुली हैं।

जगमगी जोतिन जड़ाऊ मनि-मोतिन की
चंद-मुख-मंडल पै मंडित किनारी-सी ;
बेंदी बैर बीरन गहीर नग हीरन की
देव झमकनि में झमक भीर भारी-सी* ।
अंग-अंग उमड़्यो परत रूप रंग नव-
जोबन अनूपम उज्यास न उज्यारी-सी† ;
डगर-डगर बगरावति अगर अंग,
जगरमगर आपु आवति दिवारी-सी‡ ॥ १२४ ॥

गहीर = गंभीर, भारी। नग = रत्न। झमकनि = प्रकाश। उज्यास = प्रकाश-समूह। अगर = आगे।

गोरे मुख गोल हरे हँसत कपोल बड़े,
लोयन बिलोल बोल लोने लीन लाज पर ;
लोभा लागे लाल लखिबे को कबि देव छबि
गोभा-से उठत रूप सोभा के समाज पर।

---

* बेंदी अच्छे पानों तथा भारी हीरा के नगों के प्रकाशों में ज्योति की बड़ी भीड़-सी लगी है।

† नए यौवन का ऐसा उजियाला है, मानो चाँदनी रही न गई।

‡ रास्ते-रास्ते में अंग की जगमगाहट आगे ही फैलाती हुई स्वयं वह दीवाली-सी (चमकती हुई) चली आती है।

बादले की सारी दरदावन किनारी जग-
मगी जरतारी झीने झालरि के साज पर ;
मोती गुहे कोरन चमक चहुँ ओरन ज्यों
तोरन तरैयन की तानी द्विजराज पर ॥ १२५ ॥

हरे = धीरे-धीरे। बिलोल = चंचल। गोभा (कोभा) = कल्ला। बादले (बादला) = एक प्रकार का कपड़ा, जो तार व रेशम से बनता है। दरदावन (दरदामन) सब ओर। तोरन (तोरण) = बंदनवार।

सोधि सुधारि सुधाधरि देव रची नख ते सिख सुद्ध ससो-सी,
सोने-से रंग, सलोने-से अंगन कौनै न नैन कसौटी कसी-सी ;
ही के बुझैं सबही के सताप सु सौतिन* को असराप असीसी,
भावती हौ हित ही कि हितू भई आवती हौ अँखियानि बसी-सी।

असराप = विना शाप। सराप = श्राप = शाप। असीसी = आशीर्वाद दिया।

लागत समीर लंक लहकै समूल अंग,
फूल-से दुकूलन सुगंध बिथुरो परै ;
इंदु-सो बदन मंद हाँसी सुधा-बिंदु
अरबिंदु ज्यौं मुदित मकरंदन मुरो परै।
ललित लिलार श्रम झलक अलक भार,
मग में धरत पग जावक घुरो परै ;
देव मनि-नूपुर-पदुम पद दू पर ह्वै,
भू पर अनूप रूप रंग निचुरो परै ॥ १२७ ॥

---

* सौतों को आशीर्वाद देती है।

लंक = कटि । श्रम झलक = परिश्रम की झलक अर्थात् स्वेद-बिंदु । पदुम-पद दू पर = दोनो चरणारविंदों पर ।

अंबर नील मिली कबरी मुकुता-लर दामिनि-सी दसहूँ दिसि,
ता मधि माथे में हीरा गुह्यो सुगयो गड़ि केसन को छबि सों लिसि ;
माँग के मूल बन्यो सिरफूल दब्यो झमकै कनकावलि सों घिसि,
शृंग सुमेरु मिले रवि-चंद ज्यों पावस मास अमावस की निसि ।

कबरी = लट । लिसि = मिल करके । शृंग सुमेरु = सुमेरु-पर्वत की चोटी पर । अंबर नील = नीला कपड़ा, जो बेनी में लगा हुआ है । आकाश का प्रयोजन नहीं है, क्योंकि मुक्ता-लर की दामिनि से जो उपमा है, वह इस कारण से केवल एकदेशीय मानी जायगी कि आगे के पदों में केश-पाश का आकाश से रूपक चला नहीं है ।

काम-गिरि-कुंड ते उठति धूम-सिखा कै
चटक-चरनाली सारदा में पीत पंक की* ;
तनक-तनक अंक-पाँति ज्यों कनक-पत्र,
बाँचत ससंक लंक लीनी रीति रंक की ।
सूछम उदर में उदार निरै नाभी कूप
निकसति ताते तती पातक अतंक की ;
रंचक चितौत चित-बंचक चढ़ावै दोष, रोम-
रेखा चौथि-सोम-रेखा ज्यों कलंक की ॥ १२६ ॥

---

* काम-गिरि-कुंड = कुचों के बीच का नीचा स्थान । यह रोमावली काम-गिरि-कुंड से उठती हुई धूम-शिखा है, या पीत-पंक-युक्त सरस्वती-नदी में चटक-पक्षी की चरणावली (चरण-चिह्न की पंक्ति) ।

नायिका की रोमावली का वर्णन है। चटक = एक पक्षी, जिसको गौरैया कहते हैं। चरनाली = चरखों की पंक्ति। सारदा = सरस्वती। लंक = कटि। लंक लीनी रीति रंक की = कटि-प्रदेश रंक की दशा को प्राप्त हुआ; अर्थात् (कटि) क्षीण हो गई। उदार = इस वास्ते उदार है कि पापों को बाहर निकाले देता है। निरै = नरक। ततो पातक अतंक = पातकों के प्रताप का विस्तार। यहाँ कवि ने रोमराजी की श्याम रंग के कारण पाप से समता दी है। रंचक = थोड़ा। चित-बंचक = चित्त को ठगनेवाली। चित्त-वृत्ति उसे देखकर बिगड़ती, सो मानो वह सदोष हो जाती है।

उज्जल कपोल अरुनाधर मधुर बोल,
लोल चकचौंध सो अमंद मंद हास को;
चीकने चिबुक चारु नासिका मुकुत भारु,
ललित लिलार बेंदी बंदन बिलास को*।
कंचन किनारो झुमकारी मै करन-फूल,
सीस-फूल हीरा लाल मोतिन उजास को;
देव ज्यों उदित इंदु-मंडल अखंड मुख-
मंडल के आस-पास मंडल प्रकास को॥ १३०॥

नायिका के मुख-मंडल का वर्णन। अरुनाधर = लाल ओंठ। लोल = चंचल। उजास = प्रकाश। मै = (मय); सहित। झुमकारी मै करन-फूल = झुमकारो (गुच्छा)-सहित कान में पहनने का गहना।

---

* बिंदी और इंगुर उसमें विलास करते हैं, अर्थात् खेल-सा करके शोभा फैलाते हैं।

औंड़ी चितौनि कहूँ उड़ि लागती बंदन आड़े जो आड़ न होती*,
ढारतो गूँदि गुमान गयंदु जो गोल कपोलनि गाड़ न होती† ;
लूटतीं लोकुलटैं सफुलेल हमेल हिए भुज टाड़ न होती‡ ,
चंदु अचानक क्यौं परतो मुख-चंदु पै जो चित चाड़ न होती§ ।

औंड़ी = टेढ़ी । गाड़ = गड़नि, नम्रता । लटैं सफुलेल = फुलेल-सहित वेणी (केश-कलाप) । हमेल = हृदय पर पहनने का एक भूषण । टाड़ = हाथ पर पहनने का एक भूषण, टँड़िया । चाड़ (चाँड़) = भारी चाह ।

ईंगुर-सो रँग एँड़िन बीच, भरीं अँगुरी अति कोमलतायनि ,
चंदन-बिंदु मनौ दमकैं नख देव चुनी चमकैं ज्यों सुभायनि+ ;
बंदत नंदकुमार तिहारेई राधे बधू ब्रज की ठकुरायनि ,
नूपुर-संजुत मंजु मनोहर जावक-रंजित कंज-से पायनि ॥१३२॥

* यदि ईंगुर की आड़ (बुंदी) आड़े न आती (रक्षिका न होती), तो कहीं नायिका के (किसी को) टेढ़ी डीठि (नज़र) उड़कर लग जाती ।

† गुमान-रूपी हाथी गालों के गड्ढे में गिर पड़ने से किसी को मर्दित नहीं कर सकता ।

‡ यदि टँड़िया से भुज व हमेल से हृदय एक प्रकार बद्ध-से न होते, तो फुलेल लगी हुई लटें सारी दुनिया लूट लेतीं । प्रयोजन यह समझ पड़ता है कि टँड़िया तथा हमेल भी ऐसी अच्छी हैं कि केवल लटें संसार का ध्यान अपनी ओर नहीं खींच पातीं । भाव यह बैठता है कि लटें, टाड़ और हमेल, सभी बहुत सौंदर्य-विवर्द्धक हैं ।

§ मुखचंद तो अच्छा है ही, किंतु चित्त की चाह उससे भी अच्छी है, जिससे केवल मुख पर ध्यान नहीं जमता ।

+ नखों की उपमा चंदन-बिंदु तथा चुनी, दोनो से दी गई है ।

केवल राधिकाजी के चरणों का वर्णन एवं उन चरणों की वंदना कृष्णचंद्रजी से कराई जा रही है। चुनी = माणिक्य के छोटे टुकड़े। जावक = महावर। रंजित = रँगे हुए। मंजु = सुंदर।

देव सुबरन गुन बीध्यो है मधुर महा,
अधर सधर के अखारे मुख ढार मैं*;
थिरकत थान तान तोरत तरय्योनन सों,
बोलन कपोलन के बिमल बिहार मैं†।
मनोरथ चढ़्यो मनमथ के अथक पथ,
नथ को पै न थको निरत निराधार मैं‡;
मोती लटकन को नवल नट नाचत,
नयन निरतन हैं चटुल चटसार मैं॥ १३२॥

---

* देव कहता है कि लटकन सोने के तार से गूथा है, तथा मुख में ढले हुए महामधुर अधर सधर (नीचे के तथा ऊपर के ओंठ) के अखाड़े में (नाचता) है।

† नायिका के बोलने में जब विमल कपोल (गाल) विहार करते (हिलते-डोलते) हैं, तब लटकन अपने स्थान पर ताल देकर नाचता तथा कर्णफूलों से तान तोड़ता है, अर्थात् कर्णफूल और लटकन दोनो बोलने में साथ-ही-साथ ऐसे हिलते हैं, मानो एक दूसरे से तान तोड़ते हैं।

‡ लटकन मनोरथ (वांछा) है, जो कामदेव के अथक (न थकनेवाले) मार्ग पर चढ़ा हुआ है। वह यद्यपि नथ (बेसरि) का अंग है, तथापि निराधारता पर निश्चय-पूर्वक रत होने से भी नहीं थकता है। प्रयोजन यह है कि (आधार-शून्य) लटका हुआ होने पर भी वह थकता नहीं है। जैसे नट थोड़ा-सा आधार लिए

(१८)

चित्र-सा खिंचा हुआ

प्यारी सकेत सिधारी सखी सँग स्याम के काम सँदेसनि के सुख,
सूनो इतै रँगभौन चितै चित मौन रही चकि चौंकि चहूँ रुख;
एकहि बार रही जकि ज्यों कि त्यों भौंहनि तानिकै मानि-महादुख,
देव कछू रद बीरी दै बीरी सुहाथ की हाथ रही मुख की मुख॥१३४॥

विप्रलब्धा नायिका का वर्णन है।

सकेत (संकेत) = संकेत-स्थान। जकि = ठिठक करके। रद = दाँत।

पीछे परबीनैं बोनैं संग की सहेली, आगे
भार डर भूषन डगर डारै छोरि-छोरि;
मोरै मुख मोरनि त्यों चौंकति चकोरनि, त्यों
भौंरनि की भीर भीरु देखै मुख मोरि-मोरि।
एक कर आली कर ऊपर ही धरे, हरे-
हरे पग धरै देव चलै चित चोरि-चोरि;
दूजे हाथ साथ लै सुनावति बचन, राज-
हंसनि चुनावति मुकुत-माल तोरि-तोरि॥१३५॥

रहने पर भी निराधार नृत्य करनेवाले कहे जाते हैं, वैसे ही लटकन नथ का थोड़ा-सा आधार लिए रहने पर भी देखने में निराधार-सा दिखाई देने से यहाँ पर निराधार ही कहा गया है। निरत-शब्द का अर्थ निश्चयेन रत का है, तथा यह शब्द नृत्य का अपभ्रंश भी कहा जा सकता है।

लटकन का चटसार (पाठशाला) इस कारण से चटुल (चंचल) कहा गया है कि नथ सदा हुलता ही रहता है।

इस छंद में कवि ने नायिका का अच्छा चित्र प्रदर्शित किया है।
परवीन = प्रवीण, चतुर। बोनैं = बटोरती हैं।

पीत रंग सारी गोरे अंग मिलि गई देव,
श्रीफल-उरोज-आभा आभासै अधिक-सी ;
छूटी अलकनि छलकनि जल-बूँदन की,
बिना बेंदी बंदन बदन-सोभा बिकसी ;
तजि-तजि कुंज-पुंज ऊपर मधुप-गुंज
गुंजरत मंजु रव बोलै बाल पिक-सी ;
नीबी उकसाइ, नेकु नयन हँसाय, हँसि
ससि-मुखी सकुचि सरोवर तैं निकसी ॥१३६॥

नायिका के स्नान का वर्णन है। बंदन = इंगुर।

(१६)

दर्शन-मिलन

औचक ही चितई भरि लोचन वा रस के बस ह्वै चुकी चेरियै,
मोहक मोहूपै हौं नहीं सूझत बूझत स्याम घने तम घेरियै* ;
आँनद के मद के नद मैं मनु बूड़ि गयो हद मैं नाहिं हेरियै,
कै उलटो सब लोक लगै किधौं देव करी उलटी मति मेरियै ॥१३७॥

नायिका के प्रेमाधिक्य का वर्णन है।

---

* हे मोहनेवाले, मैं स्वयं अपने को नहीं दिखाई देती। जान पड़ता है, कृष्ण-रूपी घने अंधकार ने मुझे घेर लिया है।
नायिका नायक पर एक ही दृष्टि से उन्मत्त हो गई है।

पहिले सुनि राख्यौ हो भाख्यो सखी रस चाख्यो अचानक कानपुटी,
लखि चित्र-चरित्र लख्यो सपने अबतौ खिन आँखिन आँखि जुटी;
उमग्यो मनु देव लग्यो पनु सो गुरुबंधुनि की धन-रासि लुटी,
कुल-कानि को गाठितें छूट्यो हियो,हियतें कुल-कानिकी गाँठि छुटी।

इस छंद में कवि नायक के चारो प्रकारों के दर्शनों का वर्णन करता है। यश-श्रवण, चित्र-दर्शन, स्वप्नावलोकन तथा प्रत्यक्ष दर्शन, ये चार प्रकार के दर्शन कहलाते हैं।

कानपुटी = कानों के रंध्र। पनु = प्रण। कानि = मर्यादा।

सारसी सारस, हंसिनी हंस, चकोरी चकोर मिले सुख लूटैं,
देव चितै चकई चकवा बिछुरे निसि के बिस-घूँट-से घूँटैं;
केते कपोत मृगी मृग री युग जीवैं न जो युग योग ते फूटैं,
फूली लता रस के बस दौरत भौंर के भारन डार न टूटैं ॥१३९॥

दंपति-मिलन के उदाहरण।

बिस-घूँट-से घूँटैं = विष-केसे घूँट निगलते हैं (विष-घूँट के निगलने में जो समय लगता है, वह नितांत दुःखद होता है। इसी प्रकार रात कटती है)।

आपुस मैं रस मैं रहसैं बहसैं बनि राधिका कुंजबिहारी,
स्यामा सराहति स्याम कि पागहि, स्याम सराहत स्यामा कि सारी;
एकहि आरसी देखि कहै तिय नीके लगौ पिय प्यौ कहै प्यारी,
देवजू बालम बाल को बाद बिलोकि भई बलि हौं बलिहारी ॥१४०॥

युगल-विलास।

रहसैं = विनोद करते हैं। भई बलि हौं बलिहारी = बलि जाऊँ, मैं निछावर हो गई।

दूलह को देखत हिए में हूल फूल ह्वै
बनावति दुकूल फूल फूलनि बसति है;
सुनत अनूप रूप नूतन निहारि तनु
अतनु तुला में तनु तोलति सचति है।
लाज-भय-मूल न उघारि भुज-मूलन
अकेली ह्वै नबेली बाल केली मैं हँसति है;
पहिरति हेरति उतारति धरति देव
दोऊ कर कंचुकी उकासति-कसति है ॥ १४१ ॥

नायक के दर्शन से नायिका के मन में तन्मयता एवं उद्वेग (चित्त की आकुलता) उत्पन्न होता है। नूतन = नवीन। अतनु = नहीं है तनु जिसके, अर्थात् कामदेव। सचति है = सचेत होती है। मूलन = जड़ों। फूल फूलनि बसति है = प्रति फूल को दुकूल में इतने विचार से लगाती है, मानो प्रत्येक फूल में स्वयं बस जाती है। सुनत = सुनती थी। हूल फूल = लोट-पोट। लाज-भय-मूल न = लज्जा अथवा भय का मूल उसमें नहीं है, अर्थात् प्रौढ़ा है।

आँखिन आँखि लगाए रहै सुनिए धुनि कानन को सुखकारी,
देव रही हिय मैं घरु कै न रुकै निसरै बिसरै न बिसारी;
फूल मैं बासु ज्यों मूल सुबासु को है फल फूलि रही फुलवारी,
प्यारी उज्यारी हिए भरि पूरि है दूरि न जीवन-मूरि हमारी ॥१४२॥

नायक अपनी नायिका का हृदयस्थ होना प्रकट करता है। निसरै = निकलै। जीवन-मूरि = जीवन की जड़ अर्थात् जीवनावलंब।

रीझि-रीझि, रहसि-रहसि*, हँसि-हँसि उठैं,
साँसैं भरि, आँसू भरि कहत दई - दई ;
चौंकि-चौंकि, चकि-चकि, उचकि-उचकि देव,
जकि-जकि, बकि-बकि परत बई-बई† ।
दुहुन को रूप - गुन दोऊ बरनत फिरैं,
घर न थिरात रीति नेह की नई - नई ;
मोहि-मोहि मोहन को मन भयो राधामय,
राधा - मन मोहि-मोहि मोहनमई भई ॥१४३॥

राधा और कृष्ण के अन्योन्य प्रेम का वर्णन है । इस छंद में भाव-समुच्चय की मुख्यता है ।

(२०)

प्रेम

जाके मद मात्यौ सो उमात्यौ‡ ना कहूँ है कोई,
बूड़्यो उछल्यौ ना तर्‌यौ सोभा-सिंधु सामुहै ;
पीवत ही जाहि कोई मर्‌यो, सो अमर भयो,
बौरान्यौ जगत जान्यौ मान्यौ सुख-धामु है§ ।

---

* प्रसन्न होकर ।

† अलग ।

‡ निर्मद हुआ ।

§ दुनिया ने उसे पागल जाना, किंतु प्रेमी ने वही सुख का घर माना ।

चख के चखक भरि चाखत ही जाहि फिरि
चाख्यो ना पियूष कछु ऐसो अभिरामु है* ;
दंपति सरूप ब्रज औतर्यौ अनूप सोई
देव कियो देखि प्रेम रस प्रेम नामु है ॥ १४४ ॥

चखक (चषक) = मद्य पीने का पात्र। चख = चक्षु। अभिरामु = आनंददायक।

एकै अभिलाख लाख-लाख भाँति लेखियत,
देखियत† दूसरो न देव चराचर मैं ;
जासों मनु राचै तासों तनु-मनु राचै, रुचि
भरि कै उघरि जाँचै साँचै करि कर मैं।
पाँचन के आगे आँच लागे ते न लौटि जाय,
साँच देइ प्यारे की सती लौ बैठि सर मैं‡ ;
प्रेम सो कहत कोई ठाकुर न ऐंठौ, सुनि
बैठौ गड़ि गहिरे तौ पैठौ प्रेम-घर मैं§ ॥ १४५ ॥

---

* वह प्रेम कुछ ऐसा रम्य है कि नेत्र के प्याले में भरकर जिसने उसे पिया, उसने फिर अमृत को भी न चक्खा (अर्थात् अमृत की भी परवा न की)।

† प्रेमी के अतिरिक्त चराचर में कोई दूसरा देखता ही नहीं।

‡ लौ-सर (ज्वाल के तालाब) में प्यारे (शिव) की सती की भाँति बैठकर सत्यता प्रकट करे। जैसे सतीजी ने अग्नि में पैठकर शिव की सत्यता तथा उनमें अपना प्रेम प्रकट किया, वैसे ही अपने पति में शुद्ध स्वकीया प्रेम रक्खे। यह भी अर्थ है कि सती लौ (की भाँति) सर (सरा, चिता) में बैठकर।

§ प्रेम उसे कहते हैं, जिससे कोई स्वामित्व का अहंकार नहीं कर सकता। यदि प्रेम का नाम ही सुनकर गड़कर गहरे में बैठो (पूरी नम्रता रक्खो), तो प्रेम के घर में प्रवेश करो।

सती का उदाहरण देकर कवि शुद्ध प्रेम का वर्णन करता है। बड़ा ही विशद वर्णन है। राचै (रच जाना) = प्रेम-विवश होना। साँचै करि कर मैं = सचाई को हाथ में लेकर (सच्चे कर्म करके)। गड़ि = धसकर। ठाकुर = स्वामी।

को कुल* या ब्रजगोकुल दो कुल दीप-सिखा-सी ससी-सी रहीं भरि,
त्यौं न तिन्हैं हरि हेरत री रँगराती न जो अँगराती गरे परि;
जो नबला नव इंदु-कला† ज्यौं लची परै प्रेम रची पिय सों लरि,
भेटत देखि बिसेखि हिए ब्रजभूभुज‡ देव दुहूँ भुज सों भरि।

इस ब्रजगोकुल में कौन कुल दो कुल (भ्रष्ट) है ? (तथापि) सबमें दीप-शिखा एवं शशि के समान सुंदरियाँ भरी पड़ी हैं। जो नायिका केवल विषय-वासना-युक्ता है, किंतु रंग (प्रेम) में रत नहीं है, वह चाहे गले भी पड़े, तो भी भगवान् उसे उस प्रकार नहीं देखते (जैसे प्रेमवती को)। जो नवेंदु-कला-समान यौवन-युक्ता नव-वधू प्रेमवती होकर नम्रता ग्रहण करे, चाहे पति से लड़े भी, उसे ब्रजपति विशेष करके देखकर दोनो भुजाओं से भरकर अंक लगाते हैं।

लची परै = झुकी पड़ती हैं, अर्थात् नम्र होती हैं। अँगराती = अंग से रत हैं, अर्थात् केवल अंग भव-विषय-वासना में रत हैं, प्रेम में नहीं।

जीव सों जीवन, जीवन सों धन, सो धन जीवित नाथ निबोधो,
या चित की गति ईठ की ईठी लौं ईठ की डीठि अनीठ लौं सोधो;

---

* इस गोकुल में दो कुलवाला (कुल-भ्रष्ट) कौन कुल है ? यह भी अर्थ है कि ब्रज और गोकुल (के) दो कुलों में।

† दूज का चाँद।

‡ राजा (ब्रजराज)।

या मनमोहन को वह मोहन सोहन सुंदर रूप बिरोधो,
या जिय मैं पिय मूरति है पिय मूरति देव सुमूरति कोधो ॥१४७॥

जीव से जीवन मिलता है, और जीवन से धन, किंतु स्वामी के जीवित रखने को वह धन भी गया, अर्थात् यदि चला जाय, तो हानि नहीं। इस चित्त की गति इष्ट (प्रीति-भाजन) की प्रीति तक है, और उस प्रीति-भाजन की सीधी निगाह अनिष्ट तक खोजा है; अर्थात् प्रीति-भाजन की सीधी निगाह के लिये केवल अनिष्ट सीमा समझा है, शेष कोई सीमा नहीं है। चित्त उस मनमोहन के शोभायमान सुंदर रूप में अटका है। इस मेरे चित्त में प्रियतम की मूर्ति है, और प्रियतम की मूर्ति सुंदर मूर्ति (भगवान्) की ओर है; अर्थात् प्रियतम ही भगवान् हैं।

निबोधो = भली भाँति जाना। बिरोधो = अटकी हुई ('रोधन'-शब्द से बना है)। कोधो = तरफ़।

जेठी बड़ी ते अमेठीसि भौंहनि रूछ महा मन सूछम सीछैं,
देवजू बातनि ही सों हितौति सी सौति सखी सु चितौति तिरीछैं*;
लाज† की आँचनि या चित राच न नाच नचाई हौं नेह न छीछैं,
चाह भई फिरौं या चित मेरे कि छाहँ भई फिरौं नाह के पोछैं॥१४८॥

---

* सखी मानो सौति के समान होकर टेढ़ी दृष्टि से देखती है, और केवल बातों में हित करती है, वास्तविक नहीं। इस पद का भाव निम्न-लिखित उर्दू-छंद से मिलता है—

यॆ कहाँ कि दोस्ती है कि हुए हैं दोस्त नासेह,
कोइ चारासाज़ होता, कोइ ग़मगुसार होता।

† यह चित्त लाज की आँचों से नहीं रचा (अनुरक्त) है, अथच अक्षुण्ण प्रेम ने मुझे नाच नचाया है।

अमेठी = टेढ़ी । रूछ (रुक्ष) = रूखा । सूछम = सूक्ष्म । सीखैं = शिक्षा देती हैं। छीछैं = क्षीण ।

देखे न परत देव देखिबे की परी बानि,
देखि-देखि दूनी दिख-साध उपजति है;
सरद उदित इंदु बिंदु-सो लगत, लखे
मुदित मुखारबिंदु इंदिरा लजति है।
अद्भुत ऊख-सी पियूष-सी मधुर बानि
सुनि-सुनि स्रवनन भूख-सी भजति है;
मंत्री कह्यो मैन परतंत्री कह्यो बैनन को,
बिना तार तंत्री जीभ जंत्री-सी बजति है *॥१४६॥

नायिका का सौंदर्य (तथा नायक का नायिका के प्रति प्रेम) वर्णित है। बानि = स्वभाव । साध = इच्छा । तंत्री = वीणा, सारंगी आदि तारवाले बाजे ।

कठिन कुठाट काठ कुंठित कुठार कूट
रूठि हठ कोठरी कपाट कपटन की †;

---

* नायिका की छवि देखकर नायक की यह दशा होती है कि उसका मंत्री कामदेव हो जाता है, उसके बैन परतंत्र हो जाते हैं, और उसकी जिह्वा बिना तार की वीणा के समान होकर भी यंत्र की भाँति बजने लगती है, अर्थात् वह नायिका के रूप की अक्षुण्ण प्रशंसा करने लगता है।

† हठ एवं रूठने (नाराज़ होने) रूपी कपट (रूपी) कपाटों की जो कोठरी है, उसमें कठिन कुठाट-रूपी ऐसा काठ लगा है, जिसके गढ़ने में कुठारों (कुल्हाड़ियों) के कूट (पर्वत, समूह) गोंठले हो गए हैं। प्रयोजन यह है कि प्रेम-पात्री के साथ हठ एवं रूठना बहुत बुरा है, और उसमें प्रायः कपट का समावेश रहता है।

चीकनी सुहाग नेह हेम की सराँग पर
प्रेम-पाउ परत न राह रपटन की* ।
बरतनु बरत उबारिए सुरत-बारि
बारियै न बिरह-बयारि झपटन की † ;
देवजू बिदेह‡ दाह देह दहकति आवै,
आँचल-पटनि ओट आँच लपटन की § ॥१५०॥

बिरह-निवेदन है ।

हेम की सराँग पर = कंचन के खंभ पर । यहाँ खंभ से उस मलखंभ का प्रयोजन है, जो तेल आदि लगाकर चिकना किया जाता है, और जिसके सहारे से नट कला करते हैं । बरतनु बरत उबारिए सुरत-बारि = अच्छे शरीर की दाह को स्मरण-जल से शांत कीजिए ।

पीछे तिरीछे कटाच्छन सों इत वै चितवैं री लला ललचो हैं,
चौगुनो चाउ चवायनि के चित चाह चढ़े हैं चबाउ मचो हैं ;

---

* सौभाग्य भव प्रेम का जो सोने का मलखंभ है, वह चीकना होने से उस पर रपटने की राह है, सो उस पर प्रेम का पैर नहीं जमता है । प्रयोजन यह है कि प्रेम पर स्थिरता के लिये बड़ी दृढ़ता की आवश्यकता है ।

† (नायिका का) श्रेष्ठ शरीर (विरहाग्नि से) जलता है, उसको विरह-बयारि के झपटों (की तेज़ी) को बचाइए तथा सुरत-रूपी जल से उसे उबारिए ।

‡ कामदेव ।

§ आँचल-पटों की ओट भी विरहाग्नि की लपटों की आँच लगती है ।

जोबन आयो न पाप लग्यो कवि देव रहैं गुरु लोग रिसोहैं,
जी मैं लजैए जुजैए कहूँ, तित पैए कलंक चितैए जु सोहैं ॥१५१॥

मध्या नायिका का प्रेम वर्णित है। चबायनि = चर्चा तथा निंदा करनेवाले। सोहैं = सामने।

पीर सही घर ही में रही कवि देव दियो नहिं दूतिन को दुख,
काहुकि बात कही न सुनी, मनु मारि बिसारि दियो सिगरो सुख;
भीर मैं भूलि कहूँ सखि मैं जब ते ब्रजराज कि ओर कियो रुख,
मोहिं भटू तब ते निसि-दौस चितौत ही जात चवाइन के मुख॥१५२॥

चवाइन = चर्चा तथा निंदा करनेवालियों।

कंचन के कलसा कुच ऊँचे समीपहि मैन-महीप ठयो है,
बाजी खिलाय कै बालपनो अपनो पन लै सपनो सो भयो है;
देव कहा कहौं ठाकुर ईठ गयो दुरि यो दुरयोग नयो है,
जोबन-एंठ में पैठत ही मन-मानिक गाँठि ते ऐंठि लयो है ॥१५३॥

क्या कहूँ कि इष्ट (प्रिय) ठाकुर (स्वामी, नायक) छिप गया। यह एक नया दुर्योग (बुरा डौल) हो गया। उस नायक ने नायिका के यौवन की ऐंठ में पैठते ही माणिक्य-सा मन एंठ लिया।

नायिका के वियोग का वर्णन है। ठयो है = ठहरा हुआ है। बाजी = खेल। पन = प्रतिज्ञा। गाँठि ते = पास से। ऐंठि लयो है = छीन लिया है।

देव मैं सीस बसायौ सनेह कै भाल मृगम्मद-बिंदु कै भाख्यो,
कंचुकी मैं चुपर्‌यो करि चोवा लगाय लियो उर सों अभिलाख्यो;
लै मखतूल गुहे गहने रस मूरतिवंत सिंगार कै चाख्यो,
साँवरे लाल को साँवरो रूप मैं नैननि को कजरा करि राख्यो।

सनेह = प्रेम; स्निग्ध द्रव्य (तैलादि) से भी मतलब है। मृगम्मद = कस्तूरी। मखतूल = काला रेशम।

कोऊ कहौ कुलटा, कुलीन-अकुलीन कहौ,
कोऊ कहौ रंकिनि कलंकिनि कुनारी हौं;
कैसो परलोक, नरलोक बर लोकन में,
लीन्हो मैं अलीक लोक-लीकन तें न्यारी हौं।
तन जाहि, मन जाहि, देव गुरुजन जाहि,
जीव किन जाहि टेक टरति न टारी हौं;
बृंदाबनवारी बनवारी की मुकुटवारी,
पीत पटवारी वहि मूरति पै वारी हौं॥ १५५॥

नायिका के अगाध प्रेम का वर्णन है। बनवारी = चरणों तक की माला धारण करनेवाला (बनमाली), अर्थात् भगवान्। बनवारी की वृंदावनवाली, पीत पटवाली एवं मुकुटवाली मूर्ति पर नायिका न्योछावर है। अलीक = लोक-मर्यादा से भिन्न।

खीझै दुख पाऊँ हौं न रीझै सुख पाऊँ, मेरे
खीझ-रीझ एकै मनु राग्यो सोई रागि चुक्यो;
जस-अपजस, कुबड़ाई औ' बड़ाई, गुन-
औगुन न जानै जीव जाग्यो सोई जागि चुक्यो।
कौने काज गुरजन बरजैं जु दुरजन,
कैसेऊ न नेम-प्रेम-पाग्यो सोई पागि चुक्यो;
लोगनि लगायो सुतौ लागो अनलागो देव,
पूरो पन लागो मनु लागो सोई लागि चुक्यो॥१५६॥

खीझे = क्रोध करने पर। रागि चुक्यो = प्रेम में मग्न हो चुका। बरजैं = रोकें। पागि चुक्यो = लिपट चुका। लोगनि लगायो = लोगों ने (कलंक) लगाया। जागि चुक्यो = प्रेम का ज्ञान प्राप्त कर चुका।

काहू कि कोई कहावति हौं नहिं जाति न पाँति न जाते खसौंगी,
मेरियै हास करौ किन लोग हौं को* कवि देवजू काहि हसौंगी;
गोकुलचंद की चेरी चकोरी ह्वै मंद हँसी मृदु फंद फँसौंगी,
मेरी न बात बकौ बलि† कोई हौं बावरी ह्वै ब्रज-बीच बसौंगी।

खसौंगी = गिरूँगी, पतिता होऊँगी।

साँझ को-सो चंद भोर को-सो करि राख्यौ मुख,
भोर की-सी कांति भाँति साँझ की-सी भई आनि‡;
साँझ भोर कोसो नभ देखिए मलीन मन,
साँझ भोर चकवा चकोर की-सी हित-हानि§।

---

* मैं हूँ ही कौन, और किसे हँसूँगी ?

† बलि जाऊँ, निछावर होऊँ।

‡ जो मुख संध्या के चंद्र-सा मनोहर था, उसे प्रातःकाल के प्रकाश-हीन चंद्र-सा कर रक्खा है, अथच प्रातःकाल की-सी मुख-शोभा साँझ की उतरी हुई शोभा-सी हो गई।

§ संध्या तथा प्रातः का आकाश प्रकाश की कमी से मलीन समझा गया है। शाम को चक्रवाक की तथा सुबह चकोर की हित-हानि है।

कैसे करि कोसौं कासों कहौं कैसी करौं देव,
कीनी रिपुकेसी कैसे केसी की सुकैसो* बानि;
कैसी लाज कैसो काज कैसोधौं सखी समाज,
कैसो घरु कैसौ बरु कैसो डरु कैसी कानि ॥१५८॥

कोसो = कैसा, सदृश। भोर = प्रातःकाल। कोसौं = बुरा चेतौं। रिपुकेसी (केशी-रिपु) = केशी नाम के असुर का शत्रु अर्थात् कृष्ण (नायक)।

साँकरी खोरि बखोरि हमैं किन खोरि लगाय खिसैबो करौ कोइ,
हारेहू हाय नहीं करिहैं हिय घायन लोन घिसैबो करौ कोइ;
देवजू धीर धरो सुधरो किन ओठन दंत पिसैबो करौ कोइ,
रूप हमैं दरसैबो करौ अरसैबो करौ कि रिसैबो करौ कोइ।

बखोरि = छेड़कर। खोरि = गली। दोष।

कैसो कुलबधू, कुल कैसो कुलबधू कौन,
तू है, यह कौन पूँछै काहू कुलटाहि री;
कहा भयो तोहि कहा काहि तोहि मोहि कीधौं,
कीधौं और का ह्वै और कहा न तौ काहि री।
जाति ही सों जाति, को है जाति कैसे जाति, एरी,
तोसों हौं रिसाति, मेरी मोसों न रिसाहि री;
लाज गहु लाज गहु, लाज गहिबे ते रही,
पंच हँसिहैं री, हौं तौ पंचन ते बाहिरी ॥१६०॥

---

* केसी की सुकैसी (की तरह) बानि (टेव) कीनी। प्रयोजन यह है कि श्रीकृष्ण (केशी के शत्रु) ने केशी दैत्य के साथ जैसी शत्रुता की थी, वैसी ही मेरे साथ की है।

इस छंद में व्यंजना और ध्वनि-नामक काव्यांगों की अच्छी बहार है।

भारी प्रेमोद्विग्नता का वर्णन है।

सखी-वचन—तू कैसी कुल-वधू है ?

नायिका का उत्तर—कुल कैसा होता है, और कुल-वधू है कौन ? प्रयोजन यह है कि यदि शुद्ध प्रेम के कारण कुल बिगड़े या कुल-वधू होने में संदेह हो, तो लोगों द्वारा माना हुआ कुल का लक्षण ही अशुद्ध है। यदि लोग प्रेमिनी का उच्चाशय समझे बिना ही उसे कुलटा समझें, तो यों ही सही ; मुझे भी उनकी परवा नहीं है।

सखी-वचन—तू कुल-वधू है।

नायिका का उत्तर—किसी कुलटा से यह कौन पूछता है ? अर्थात् मैं तो कुल के साधारण लक्षण के अनुसार कुलटा हूँ, क्योंकि अनभिज्ञ लोग शुद्ध प्रेम नहीं समझ पाते।

सखी-वचन—तुझको क्या हुआ है ? सखी ने उसके उच्च भावों को न समझकर ही यह प्रश्न किया है।

नायिका का उत्तर—क्या ? किसको ? तुझको या मुझको या किसी और को ? और नहीं तो किसको ? प्रयोजन यह कि मुझे तो कुछ नहीं हुआ है, शायद तुम्हीं को या किसी और को हुआ हो।

सखी-वचन—तू जाति से जाती है (पतित हुई जाती है)।

नायिका का उत्तर—जाति क्या है और कैसे जाती है ? प्रयोजन यह कि शुद्ध प्रेम से जाति नहीं जाती। यदि कोई इसके विपरीत माने, तो उसका जातिवाला लक्षण ही अशुद्ध है।

सखी-वचन—मैं तुझसे रिसाती हूँ।

नायिका का उत्तर—तू मेरी है, मुझसे मत क्रोध कर, मैंने किया ही क्या है ?

सखी-वचन—लाज करो, निर्लज्ज मत हो।

नायिका का उत्तर—मैं लाज करने से रही, अर्थात् तेरे विचारों-वाली लाज न करूँगी। प्रयोजन यह है कि सच्ची लाज तो मुझमें पूर्णतया है ही, तेरी समझी हुई थोथी लाज को क्यों पकड़ूँ ?

सखी-वचन—अरी ! लोग-बाग हँसेंगे।

नायिका का उत्तर—मैं पंचों से बाहर हूँ। प्रयोजन यह है कि साधारण जन-समुदाय शुद्ध प्रेम के उच्च आदर्श से पूर्णतया अनभिज्ञ है। ऐसी मूर्ख-मंडली में रहना किसी उच्च प्रेमी को शोभा नहीं देता।

बोर्‌यो बंस बिरद* मैं बौरी भई बरजत,
मेरे बार-बार बीर कोई पास पैठौ जनि ;
सिगरी सयानी तुम बिगरी अकेली हौं हीं,
गोहन मैं छाँड़ौ मोसों भौंहन अमैठौ जनि।
कुलटा कलंकिनी हौं कायर कुमति कूर,
काहू के न काम की निकाम याते ऐंठौ जनि ;
देव तहाँ बैठियत जहाँ बुद्धि बढ़ै, हौं तो
बैठी हौं बिकल, कोई मोहिं मिलि बैठौ जनि ॥१६१॥

विरहिणी नायिका है। गोहन = रास्ता।

स्याम सरूप घटा ज्यों अनूपम नीलपटा तन राधे के झूमै,
राधे के अंग के रंग रँग्यो पट बीजुरी ज्यों घन सो तन-भूमै† ;

---

* बिरद = नेकनामी = कीर्ति।

† शरीर की भूमि, अर्थात् शरीर में।

हैं प्रतिमूरति दोऊ दुहू की त्रिधो प्रतिबिंब वही घट दूजै,
एकहि देव दुदेह दुदेहरे देव दुधा यक देह दुहू मैं* ॥१६२॥

कवि मीलितोन्मीलित अलंकार द्वारा युगल स्वरूप का वर्णन करता है। बिधो (बिधि) = तरह; प्रकार। दुधा = द्विधा (द्वाभ्यां प्रकारेण) दो प्रकार से।

जे बिन देखे गए दिन बीति नयो पछिताउ अरो हिय हेए,
देवजु देखि उन्हैं हौं दुखी भई या जिय को दुख काहि दिखैए;
देखे बिना दिखसाधन ही मरि देखु री देखत ही न अघैए,
देखत-देखत-देखत ही रही आपनी देहौ न देखन पैए ॥१६३॥

अरो = अड़ा। दिखसाधन = देखने की साधैं (कामनाएँ)। अपनी देह इस कारण से नहीं देख पाती है कि नायक को देखकर आपे को भूल जाती है।

दिना दस यौबन जोवन री मरिए पचि होइ जु पै मरिबे न,
सबै जग जानत देव सुहाग की संपति भौन रही भरिबे न† ;
कहा कियो सौति कहाय कै काहू लरौ पिय लोभ तऊ लरिबे न‡,
असीसनहू§ को सही करिबे न कछू अब मोहि रही करिबे न ॥१६४॥

---

* वास्तविक देव एक ही है, जो दो देहों-रूपी देहरों (मंदिरों) में है, अथच एक ही देव दो भाग होकर दोनो देहों में है।

† सोहाग की संपत्ति घर में भरना शेप नहीं है, अर्थात् वह पूर्णतया प्राप्त हो चुकी है।

‡ यदि कोई सपत्नी पति के लालच से मुझसे लड़े, तो भी मुझे उससे लड़ना नहीं है।

§ आशीर्वचनों की भी यथार्थता पूर्ण करनी शेष नहीं है, अर्थात् सारे आशीर्वाद भी सफल हो चुके हैं। इन कारणों से नायिका कृत-कृत्य है, और कहती है कि मुझे कुछ करना शेष नहीं है।

शांति को प्राप्त हुई नायिका का वर्णन है। पचि = बहुत परिश्रम करके, पच करके।

जागत-जागत खीन* भई, अब लागत संग सखीन को भारो,
खेलिबोऊ हँसिबोऊ कहा सुख सों बसिबो बिसे बीस बिसारो;
तो सुधि दौस गँवावति देवजू जामिनि जाम मनौ जुग चारो†,
नीरज-नैन निहारिए नैनन धीरज राखत ध्यान तिहारो‡ ॥१६५॥

यहाँ सखी द्वारा नायिका का नायक से प्रेम निवेदन है।

बिसे बीस = बीस बिस्वा (पूर्णतया)। भारो = भारी, बोझा, असह्य।

पहिले सतराय रिसाय सखी जदुराय पै पाय गहाइए तौ,
फिरि भेंटि भटू भरि अंक निसंक बड़े खिन लौं उर लाइए तौ;
अपनो दुख औरन को उपहास सबै कवि देव बताइए तौ,
घनस्यामहिं नेकहुँ एक घरी को इहाँ लगि जो करि पाइए तौ॥१६६॥

अभिलाषा का वर्णन है। नायिका का सखी के प्रति कथन है।

सतराय = अप्रसन्न होकर। बड़े खिन (क्षण) लौं = बड़ी देर तक।

लाल बुलाई हौ, को हैं वे लाल, न जानती हौ तौ सुखी रहिबो करि,
री सुख काहे को देखे बिना दिखसाधन ही जियरा न परो जरि;
देव तौ जानि अजान क्यों होति यही सुनि आँसुन नैन लए भरि,
साँचे बुलाई बुलावन आई हहा कहि मोहिं कहा करिहैं हरि॥१६७॥

दिखसाधन ही = दर्शन की इच्छाओं से।

---

* क्षीण।

† रात के चारो पहर चारो युगों के समान हो गए हैं।

‡ तुम्हारा ध्यान ही उसका धैर्य रखता है।

जिन जान्यौ वेद ते तौ बाद कै बिदित होंहिं,
जिन जान्यौ लोक तेऊ लीक पै लरि मरौ ;
जिन जान्यौ तपु तीनौं तापन सों तपौ, जिन
पंचागिनि साध्यो ते समाधिन परि मरौ।
जिन जान्यौ जोग तेऊ जोगी जुग-जुग जियौ,
जिन जान्यौ जोति तेऊ जोति लै जरि मरौ ;
हौं तौ देव नंद के कुमार तेरी चेरी भई,
मेरो उपहास क्यों न कोटिन करि मरौ ॥ १६८ ॥

इस छंद में कवि वेद में केवल वाद, लोक में लीक, तप में त्रिताप, पंचाग्नि में समाधि, योग में दीर्घायु और ज्योति में उष्णता-मात्र देखता है, अथच प्रेम अथवा भक्ति को सर्व-प्रधान मानता है।

बाद = विवाद। लीक = सीमा (लोक-रीति)। तीनौं तापन = तीनों ताप, अर्थात् आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक।

बैठो सीस-मंदिर मैं सुंदरि सवार ही की,
मूँदि कै केवार देव छबि सों छकति है ;
पीत-पट लकुट मुकुट बनमाल धरि,
भेष करि पी को प्रतिबिंब मैं तकति है।
होति न निसंक उर अंक भरि भेंटिबे को,
भुजन पसारति समेटति जकति है ;
चौंकति चकति उचकति चितवति चहूँ,
झूमि ललचाति मुख चूमि न सकति है ॥ १६९ ॥

सवार ही = प्रातःकाल से। लकुट = छड़ी।

प्रेम - चरचा है अरचा है कुल नेम न
रचा है चित और अरचा है चित चारी को* ;
छोड़्यो परलोक नर-लोक बर लोक कहा,
हरख न सोक ना अलोक नर-नारी को।
घाम सित मेह न बिचारै सुख देहहू को,
प्रीति ना सनेह डरु बन ना अँध्यारी को ;
भूलेहू न भोग, बड़ी बिपति बियोग-बिथा,
जोगहू ते कठिन सँयोग पर-नारी को ॥ १७० ॥

नायिका परकीया है। नेम न रचा है = नियमों से विरुद्ध है। अलोक = आलोक, ज्योति।

प्रेम-गुन बाँधि चित चंग† सो चढ़ायो उन,
सुनि-सुनि बंसी-धुनि चंग‡ मुहचंग§ की ;
मधुर मृदंग सुर ऊरझि उतंग भई
रंग परवीन ऐसी बाजनि अभंग की।

---

* (मति को छोड़कर) चित्त पर चलनेवाले को केवल प्रेम की चर्चा और अर्चा है, अथच कुल-नियम उसके लिये अरचा (नहीं बना) है। चित्त किसी और ओर अनुरक्त नहीं है।

† पतंग।

‡ तेज़ घुमानेवाला।

§ मुरचंग बाजा।

बधिक बिहंग बधू, व्याध ज्यौं कुरंग नारि,
हनी है कुरंग-नैनी पारधी* अनंग की;
संग-संग डोलत सखीन के उमंग भरी,
अंग-अंग उठै री तरंग स्याम-रंग की ॥ १७१ ॥

गुन = डोरा । उतंग = ऊँचा । कुरंग = मृग । कुरंग-नैनी = मृग-नैनी (नायिका) ।

सुखसार सिवार सरोवर ते ससि सीस बँधे बिधि के बल सों†,
चकई-चकवा तजि गंग-तरंग अनंग के जाल परे छल सों‡;
कमलाकर ते कढ़ि कानन मैं कल हंस कलोलत हैं कल सों§,
चढ़ि काम के धाम ध्वजा फहरात सुमीनन काम कहा जल सों×।

नायिका के प्रेम-योग्य नेत्रों का वर्णन है ।

सिवार = शैवाल । अनंग = कामदेव । कमलाकर = जलाशय । कल = मधुर ध्वनि ।

---

* बहेलिया, शिकारी ।

† नायिका के नेत्र-मीन मानो सुख-पूर्ण सरोवर के शैवाल से निकाले जाकर दैव-योग से चंद्रमा के माथे पर (नायिका के मुख-चंद्र पर) बाँधे गए हैं ।

‡ या कि गंगा की तरंगों को छोड़कर चकई-चकवा छल से काम के जाल में पड़े हैं ।

§ अथवा जलाशय से निकलकर हंस का अच्छा जोड़ा वन में आराम से केलि कर रहा है ।

× यद्वा ये नेत्र नहीं हैं, वरन् काम के मंदिर की दो फहराती हुई पताकाएँ हैं । अब इन नेत्र-रूपी मीनों को जल की आवश्यकता क्या है ?

नेननि मैं ठाढ़ेई सुनावैं श्रवननि बैन,
बैन बसैं रसना हिए हू परसी मरौं *;
देखौं न सुनौं न बैन बोलि न मिलौं, न बिनु
देखि-सुनि बोलि-मिलि आँसु बरसी मरौं।
देखत दुखति सुनि सूखति बिलाति बोल
मिलेहू मलिन ह्वै कै लाज सरसी मरौं†;
एते पर देखिबे को, सुनिबे को, बोलिबे को,
देव हियो खोलि मिलिबे को तरसी मरौं ॥१७४॥

परसी = एक प्रकार की छोटी मछली। बरसी = बरसाते हुए, अर्थात् डालते हुए। सरसी = वृद्धि से।

ना खिन‡ टरत टारे, आँखि न लगत पल,
आँखिन लगे री स्यामसुंदर सलोन से;
देखि-देखि गातन अघात न अनूप रस
भरि-भरि रूप लेत आनँद अचौन से।

---

* नायक नैनों में खड़ा (सामने प्रस्तुत) है, अथच कानों में वचन सुनाता है (बात कर रहा है), किंतु नायिका के बैन जिह्वा में बसे हैं (वह अबोल है, अर्थात् उसके वचन जिह्वा का निवास नहीं छोड़ते), और तो भी हृदय में वह मछली के समान (बोलने आदि को) तड़पती है।

† लज्जाधिक्य से नायिका देखने से दुःखित होती है, बात सुनने से सूख जाती है, बोल से बिला जाती है, अर्थात् इतना सिकुड़ती है, मानो अंतर्धान हो गई है, और मिलने से मलिन होकर लाज की वृद्धि से मरी-सी जाती है।

‡ क्षण।

एरी कहि कोहौं हौं कहाँ हौं कहा कहति हौं,
कैसे बन-कुंज देव देखियत औन-से ;
राधे हौ सदन बैठी कहती हौ कान्ह-कान्ह,
हा हा कहु कान्ह वे कहाँ हैं को हैं कौन-से ॥ १७४ ॥

साढ़े तीन पदों में नायिका का कथन है, और आधे में दूती का ।
अचौन=कटोरा । आचमन करने का साधन ।

कान्हमई बृषभानु-सुता भई प्रीति नई उनई जिय जैसी,
जानै को देव बिकानोसि डोलै लगै गुरु लोगन देखे अनैसी ;
ज्यौं-ज्यौं सखी बहरावति बातन, त्यौं-त्यौं बकै वह बावरी-ऐसी,
राधिका प्यारी हमारी सौं तू कहि काल्हि की वेनु बजाई मैं कैसी*।

अनैसी = बुरी । सौं = शपथ । बहरावति = बहलाती है ।

दुहू मुख - चंद ओर चितवैं चकोर, दोऊ
चितै-चितै चौगुनो चितैबो ललचात हैं ;
हासनि हँसत बिन हाँसी बिहसत मिले
गातनि सों गात, बात बातनि में बात हैं ।
प्यारे तन प्यारी पेखि पेखि प्यारी पिय तन,
पियत न खात नेक हूँ न अनखात हैं ;
देखि ना थकत देखि - देखि ना सकत देव,
देखिबे की घात देखि-देखि ना अघात हैं ॥ १७६ ॥

संयुक्त प्रेम का वर्णन है । अनखात = रुष्ट होते हैं ।

---

* इस पद में जो कथन है, वह स्वयं राधिकाजी बावली-सी होकर तथा प्रेमोन्मत्तता के कारण अपने को श्याम समझकर कर रही हैं ।

देवजू या मन मेरे गयंद को रैनि* रही दुख गाढ़ सहा है,
प्रेम पुरातन मारग बीच टकी अटकी दृग सैल-सिला है;
आधो उसास नदी अँसुवान की बूड़्यो बटोही चलै बलु का है,
साहुनी† ह्वै चित चोति रही अरु पाहुनी ह्वै गई नींद बिदा है।

रैनि रही दुख-गाढ़ = रात दुःख का गढ़ा हो गई है। दृग टकी = दृष्टि की स्थिरता (टकटकी)। बलु का है = किस बल से। साहुनी = साहूकार की स्त्री, अर्थात् ऊँचे मनवाली।

उठी अकुलाय सुनी जब नेक कला परवीन लला ब्रजराज,
बिसारि दई कबि देव तुम्हैं अवलोकत ही अब लोक की लाज;
इते पर और चवाव चल्यौ बरजैं घर जे गुरु लोग समाज,
कहाँ लगि लाल कछू कहिए, इतनी सहिए सब रावरे काज।

नायिका नायक से अपनी प्रेम-दशा का वर्णन करती है।

चबाव = बुरी चर्चा, पैशुन्य।

जागत हू सपने न तजौं अपनेई अयानपने को अँध्यारो,
क्योंहू छिपात छिपै न दिनौ-निसि देह दिपै दुति देव उज्यारो;
नैनन ते निचुर्‌यो परै नेह रुखाई के बैनन को न पत्यारो,
दूरि रह्यो कित जीवन-मूरि जु पूरि रह्यो प्रतिबिंब ज्यों प्यारो।

---

* हाथी को फँसाने के लिये प्रायः रात को गड्ढा खोदा जाता है।

† चित्त में चीतकर (चिंता करके, विचार करके) नींद साहुनी के समान अभिमानिनी हो गई, अर्थात् बुलाने से नहीं आती, और पाहुनी के समान शीघ्र बिदा होकर चली गई।

अयानपने का अंधकार प्रेम है। नायिका कहती है कि प्रेम मूर्खता अथवा अंधकार-पूर्ण ही सही, किंतु मुझे वह सोते-जागते छोड़ता नहीं है। वह प्रेम दिन-रात क्षण-भर को भी नहीं छिपता है। उससे देह दीप्ति-पूर्ण है, अथच उसकी कांति उजियाली है। प्रयोजन यह है कि प्रेम को कोई मूर्खता या अंधकार-पूर्ण भले ही कहे, किंतु वास्तव में वह उज्ज्वल है। स्नेह के अर्थ प्रेम तथा तेल दोनों के हैं। स्नेह चिकना माना गया है, इसी से कथन हुआ है कि जब नेत्रों से स्नेह निचुड़ा पड़ता है, तब रूखे वचनों का एतबार नहीं है। जब प्रेमी प्रत्येक स्थान में छाया की भाँति प्रतिबिंबित है, तब वह जीवनाधार दूर कहाँ रहा?

अरिकै वह आजु अकेले गई खरिकै हरि के गुन रूप लुही*,
उनहूँ अपनो पहिराय हरा मुसक्यायकै गायकै गाय दुही;
कबि देव कहौ किन कोई कछू, तब ते उनके अनुराग छुही†,
सब ही सों यहै कहै बाल-बधू, यह देखु री माल गुपाल गुही।

अरिकै = अड़ करके। लुही = लुभी। खरिकै = जहाँ गाएँ और ग्वाल एकत्र हों, वह स्थान।

'खरक'-शब्द हिंदी के कोश में है। इसके माने गोशाला के हैं।

चित दै चितऊँ जित ओर सखी, तित नंदकिसोर कि ओर ठई,
दसहू दिसि दूसरी देखति ना छबि मोहन की छिति माहँ छई;
कबि देव कहाँलौं कछू कहिए, प्रतिमूरति हौं उनहीं की भई,
ब्रजबासिन को ब्रज जानि परै न भयो ब्रज री ब्रजराजमई॥१८१॥

---

* लोट-पोट हुई।
† रँगी हुई।

व्रजवासियों को व्रज समझ ही नहीं पड़ता है, क्योंकि सारा व्रज व्रजराज(भगवान्)मय हो गया है ।

ठई = स्थित ।

ए अपनी करनी किन देखत देव कहीं न बनाइ कछू मैं,
घायल ह्वै करसायल* ज्यों मृग त्यों उतही अतुरायल† घूमैं;
मेटिवे को तन-ताप दुहू भुज भेटिवे को झपटैं झुकि झूमैं,
चित्र के मंदिर मित्र तुम्हैं लखि चित्र की मूरति को मुख चूमैं।

नायक नायिका की तसवीर देखकर उद्विग्न हो जाता है । सखी नायिका से नायक की दशा का वर्णन करती है ।

आँखिमिहीचनि‡ खेलत मोहि दुहू बिधि सोच कहूँ नटि जाइ न,
चोर ह्वै सोर§ कै नंदकिसोर री जाइ छिपै पै कहूँ सटि जाइ न;
नैन-मिहीचौं जुपै उनके तजि लाज सनेह कहूँ हटि जाइ न+,
नाथ हा ! हाथ सरोज-से मेरे करेरे कटाच्छ कहूँ कटि जाइ न× ।

* काला मृग ।

† आतुरता से, जल्दी है ।

‡ आँख-मुँदौवल ।

§ चोर-मिहीचनी का नियम है कि प्रत्येक खेलनेवाला चोर हो छिपता है, किंतु एक बार ज़ोर से पुकार देता है कि खोजो । जिसको चोर खोज ले, वह दूसरे बार के खेल में चोर हो जाता है ।

+ यदि लाज छोड़कर नायक के नैन बंद करूँ, तो स्नेह-वश कहीं हाथ न हट जाय कि नैन अधमीचे रह जायँ, और उसे सब देख पड़ें, जिससे खेल बिगड़ जाय ।

× हे नाथ, तुम्हारे हाथ कमल-से हैं, सो मेरे कड़े कटाक्षों से कहीं कट न जायँ ।

इस छंद में नायिका अपने प्रेमाधिक्य का कथन करती है। दुहु बिधि सोध = दोनो प्रकार (चित्त के भीतर-बाहर) का खोज। सोर कै = शोर करके। जुपै = यदि। हा! = विस्मय। करेरे = पैने। सटि जाइ न = चिपक न जाय, अर्थात् ऐसा छिप जाय कि खोजे न मिले। नटि जाइ न = नष्ट न हो जाय, चला न जाय। मोहि = मोहित होकर।

(२१)

मन

रूप को रसिकु रसलंपटु परस लोभी
राग ही सौं रँग्यो बसै बासु लै अड़ाइतो*;
मार्‌यो नहीं जातु बिनु मारे न डेरातु घरी
काम करै खोंटे छोटे बड़े सों बड़ाइतो†।
होइ जो हमारो कोई हितू हितकारी यासों
कहै समुझाय देव कुमति छुड़ाइतो;
मानै न अनेरो‡ मनु मेरो बहुतेरो कह्यो,
पूतु ज्यों कपूतु लरिकाई को लड़ाइतो ॥ १८४ ॥
तेरो कह्यो करि-करि जीव रह्यो जरि-जरि,
हारी पाँय परि-परि तऊ तैं न की सँभार;
ललन बिलोकि देव पल न लगाइए तब,
यों कल न दीनी तैं छलन उछलनहार§।

---

* अड़ियल, हठी (पाँचो इंद्रियों के सुखार्थ मचलनेवाला)।
† छोटे और बड़े से अपने को बड़ा समझता है।
‡ अनियारा, अनोखा।
§ हे मन! तू छलने के लिये उछलता (उत्तेजित होता) है।

ऐसे निरमोही सों सनेह बाँधि हौं बँधाई
आपु बिधि बूड़्यो माँझ बाधा सिंधु निराधार ;
एरे मन मेरे तैं घनेरे दुख दीन्हें, अब
ए केवार दैके तोहि मूँदि मारौं एक बार ॥ १८५ ॥

बिधि बूड़्यो = विधि-पूर्वक डूबा, अच्छी तरह डूब गया या फँसकर डूब गया। माँझ = बीच में। केवार = किवाड़े। कपाट पलकें हैं।

औचक अगाध सिंधु स्याही को उमड़ि आयो,
तामैं तीनौ लोक बूड़ि गए यक संग मैं ;
कारे कारे आखर लिखे जु कारे कागर,
सुन्यारे करि बाँचै कौन जाँचै चित भंग मैं।
आँखिन मैं तिमिर अमावस की रैनि जिमि
जंबुरस-बुंद जमुना-जल-तरंग मैं ;
यों हीं मन मेरो मेरे काम को न रह्यो माई,
स्याम रंग ह्वै करि समान्यो स्याम-रंग मैं ॥१८६॥

आखर = अक्षर। जंबु = जामुन। औचक = एकाएक। कागर = कागज़।

मैं समुझायो नहीं समुझै मन को अपनो अपमान न सूझै,
मोहन मान करै तौ गरे परि देव मनैबे को जाइ अरूझै ;
काको भयो सबसों बिगरो यह जाको* मरै सु तौ बात न बूझै,
सौति हमारी सो प्यारे की प्यारी ता प्यारे के प्यार परोसी सों जूझै।

नायिका नायक के विषय में उपालंभ प्रकट करती हुई अपने मन का वर्णन करती है। अरूझै = उलझै।

---

* जिसके वास्ते।

सूधेहू नैन लखे न तबै अब पैए कहाँ जब चाहत हेरो,
कान करे नहि कान तबै तकि कान लगे अकुलान घनेरो ;
लाजहि जाइ मिले उतए, इत मोहि मिले मग मेटत मेरो*,
मेटौं मनोरथ हौं इनको तौ मिटै मन मेरे मनोरथ तेरो ॥ १८८ ॥

कान करे इत्यादि—कान करे नहिं (हे नेत्र, तब तुम सचेत या सजग नहीं हुए)।

कान तबै तकि (तब कान्ह को देख करके) कान लगे (तुमने लाज की)।

कान लगे अकुलान—उस काल कुल-कानि में लगे हुए तुम अब व्याकुल होने लगे।

गोत-गुमान उतै इत प्रीति सुचादरि-सी अँखियान पै खैंची,
टूटै न कानि दुहू दुखदानि की देवजू हौं दुहु ओर ते ऐंची ;
सील लटो न हियो पलटो प्रगटी सुनिरंतर अंतर कैंची,
या मन मेरे अनेरे दलाल ह्वै हौं नँदलाल के हाथ लै बैंची॥१८६॥

उधर कुल-मर्यादा का घमंड था, और इधर प्रेम ने आँखों पर चद्दर-सी तान दी, जिससे कुल आदि कुछ देख ही न पड़ते थे। इन दोनो दुखदायियों की मर्यादा नहीं टूटती थी, जिससे नायिका का चित्त दोनो ओर खिचता था। न तो शील (कुल-संबंधी महत्त्व) न्यून हुआ, न (प्रेम-पूर्ण) हृदय का ढंग पलटा, जिससे चित्र के अंदर सदैव स्थिर रहनेवाली कैंची-सी उत्पन्न हो गई (कैंची जब काटती है, तब उसमें दोनो ओर से एक दूसरी से प्रतिकूल शक्तियाँ काम करती हैं।), तो भी मेरे मन ने अन्यायी दलाल बनकर मुझे लेकर भगवान् के हाथ बेच दिया, अर्थात् उनके प्रेम के वश कर दिया।

---

* उस काल ये नेत्र उधर लज्जा को मिल गए, तथा इधर मुझसे मिलकर मेरा (सु)मार्ग मेट रहे हैं।

गोत-गुमान = कुल का अभिमान । कानि = मर्यादा । लटो (लटा) = न्यून (दुर्बल) हुआ । अनेरे = अन्यायी ।

चरननि चूमि, छ्वै छवानि ह्वै चकित देव,
भूमिकै दुकूलन न घूमि करि घटि गयो;
कोरे कर-कमल करेरे कुच कंदुकनि
खेलि-खेलि कोमल कपोलननि अटि गयो।
ऐसो मन मचला अचल अंग-अंग पर,
लालच के काज लोक-लाजहि ते हटि गयो;
लट मैं लटकि लोइननि मैं उलटि करि
त्रिबली पलटि कटि-तटी माहिं कटि गयो ॥ १६० ॥

मन के साथ नायिका के नख-शिख का वर्णन है।

नायक का मन चरणों को चूमकर, एँड़ियों को छूकर तथा दुकूलों में झूमने से चकित होकर भी वापस न हुआ, न उसकी अधिकाधिक अंग देखने की इच्छा घटी। अछूते कमल-समान हाथों तथा गेंदों के समान कड़े कुचों से खेल-खेलकर वह मुलायम गालों पर छा गया।

छवानि = एँड़ियों को। लोइननि मैं उलटि करि = आँखों को उलटा करके (मग्न होकर)।

जीभ कुजाति न नेकु लजाति गनै कुल-जाति न बात बह्यो करै*,
देव नयो हिय नेह लगाय बिदेह कि आँचन देह दह्यो करै;
जीव अजान न जानत जान जो मैन अयान के ध्यान रह्यो करै,
काहे को मेरो कहावत मेरो जु पै मन मेरो न मेरो कह्यो करै॥१६१॥

जान = ज्ञान। अयान (अजान) = अज्ञान। बिदेह = कामदेव।

---

* बात बहन करती (कहती) है।

प्रानप्यारे पति को करत अपमान, तब
जानत न, देव अब प्रान तन खोत क्यों;
रोगी ज्यों सुबात बात कहत सम्हारत न,
इत उतपात* उत पात कीन पोत क्यों।
कोसत है आप अपसोस करै आपही दे,
रोस करि तब तौ रिसात अब रोत क्यों;
पूँछै किन कोई मन पीछे पछितात कहा,
सूर छत जोय छिति मूरछित होत क्यों ॥१६२॥

कलहंतरिता नायिका का वर्णन है। सुबात = सन्निपात से पीड़ित दशा में प्रायः रोगी आयँ-बायँ बकता है, उस दशा से अभिप्राय है। उत्पात = उपद्रव। पोत = जहाज़। छत = क्षत। जोय = देख करके।

(२२)

बिरह

आई नहीं तन मैं तरुनाई भई नहीं स्याम के संग सँयोगिनि,
कौने सिखाई धौं सीख कहा सुमिरै धरि ध्यान मनो जुग जोगिनि;
भोजन बास न हास बिलास उसास भरै मनो दीरघ रोगिनि,
आँखिन ते अँसुवा नहिं सूखत एकई बार ह्वै बैठी बियोगिनि।

जुग जोगिनि = पूरे युग से जैसे योगिनी। दीरघ रोगिनि = बड़े रोगवाली। धौं = या (यह एक अव्यय है, जो ऐसे प्रश्नों के पहले लगाया जाता है, जिनमें जिज्ञासा का भाव कम और संशय का अधिक होता है)। एकई बार = एकबारगी।

---

* इधर तो मान द्वारा उत्पात किए, फिर उधर उसी मान के लिये पत्ते का जहाज़ क्यों बनाया, अर्थात् मान को डुबो क्यों दिया ?

वेई ससि - सूरज उवत निसि - दौस, वही
नखत - समूह झलकत नभ न्यारो सो ;
वेई देव दीपक समीप करि देखे, वही
दून्यौ करि देख्यो चैत पून्यौ को उज्यारो-सो।
वेई बन - बागन बिलोकै सीस - महल,
कनक मनि मोती कछू लागत न प्यारो सो ;
वाही चंदमुखी की वा मंद मुसुकानि बिन
जानि परो सब जग अधिक अँध्यारो-सो ॥ १६४ ॥

वेई = वही। उवत = उदय होते हैं। दून्यौ करि देख्यो = दुगना देखा, अर्थात् बहुत देखा।

घोर लगै घर बाहिरहू डर नूत न नूत दवागि जरे-से,
रंगित भीतिन भीति लगै लखि रंगमही रनरंग ढरे-से*;
धूम घटागर धूपन की निकसै नवजालन ब्याल भरे-से†,
जे गिरि-कंदर-से मनि-मंदिर आज अहो उजरे‡ उजरे-से।१६५॥

घोर डर = अतिशय भय। रंगमही = विलास-स्थान। धूम घटागर = अगर के धूम का समूह। अगर की लकड़ी जलाने से सुगंधि देती है। नूत न नूत = जो नए नहीं (अर्थात् पुराने) हैं, और जो नए हैं, वे दोनो दावानल से जले हुए दिखाई देते हैं। नूत आम को भी कहते हैं।

* रँगी हुई दीवारों को देखकर डर लगता है, तथा विहार-स्थल देखकर (ऐसा भान होता है कि ये) ढाले हुए (पूरे) युद्धस्थल हैं।

† धूपों (सुगंधित धूमवाली धूप) तथा अगर के धूम की घटाओं का समूह नहीं निकलता है, वरन् उसमें नवीन सर्प-से भरे हुए हैं। व्यालों में नवीनता यह है कि वे आग से निकलते हैं।

‡ उ (वे) जलकर उजड़-से गए हैं।

पून्यो॰ प्रकास उदो उकसाइकै आसहू पास बसाइ अमावस†,
दै गए चित्त मैं सोच-बिचार, सु लै गए नींद छुधा बल बावस ;
हौं‡ उत देव बसंत सदा इत है§ उत है हिय-कंप महा बस,
दै×सिसिरो निसि ग्रीषम के दिन आँखिन राखि गए रितु पावस+।

नायिका की विरह-दशा के अंतर्गत षट् ऋतुओं का वर्णन है। उदो = उदय को। बावस = बलात्कार से। अथवा वहाँ रहते हुए। है उत है = हेमंत-ऋतु है।

ना यह नंद को मंदिर है वृषभान को भौन कहा जकती हौ,
हौंहीं कि हाँ तुमहीं कबि देवजू काहि धौं घूँघट कै तकती हौ ;
भेटती मोहिं भटू किहि कारन कौन की धौं छबि सौं छकती हौ,
कैसी भई हौ कहौ किन कैसेहू कान्ह कहाँ हैं कहा बकती हौ॥१६७॥

जकती हौ = भौचक्की होती हौ।

॰ शारदीय चंद्र तथा नायिका के मुख से अभिप्राय है ; यहाँ शरद् ऋतु का निर्देश है।

† नायिका के केश-कलाप से अभिप्राय है, जो विरह-वश खुले हुए हैं।

‡ जहाँ नायक है, वहीं वसंत-ऋतु है, तथा वहीं पर सब आनंद की सामग्री है, एवं यहाँ हेमत है।

§ नायिका का विरह में हृदय काँपन से हेमंत-ऋतु का अभिप्राय है।

× नायक के विरह में नायिका के लिये रात्रि शिशिर-ऋतु की रात्रि के समान बड़ी है, तथा दिन ग्रीष्म-ऋतु के दिन के समान बड़े हैं। इस चरण में शिशिर तथा ग्रीष्म-ऋतुओं का निर्देश है।

+ नेत्रों से अश्रु-धारा का बहना मानो पावस-ऋतु है।

देखे दुख देत चेत* चंद्रिका† अचेत करि,
चैन न परत चंद चंदन को टारि दै;
छीजन लगी है छबि, बीजन‡ करै न बीर,
नीजन§ सुहात है सखीजन निवारि दै।
सोए सजि सेजन करेजन मैं सूल उठै,
जारि दै उसीर× कुटी, रावटी उजारि दै;
फूकै ज्यों फनी+ री फूल-माल को न नीरी करि,
एबीरी बरी ऐ जाति या बीरी बगारि दै ॥ १९८ ॥

एबीरी = ओ री, एरी। बगारि दै = फेंक दे। रावटी = छोटा खेमा या बँगला।

केलि के बगीचे लौं अकेली अकुलाय आई,
नागरि नबेली बेली हेरत हहरि परी;
कुंज-पुंज तीर तहँ गुंजत भँवर-भीर,
सुखद समीर सीरे नीर की नहरि परी।
देव तेहि काल गूँधि ल्याई माल मालिनि, सो
देखत बिरह-बिष-ब्याल की लहरि परी;
छोह-भरी छरी-सी छबीली छिति माहिं फूल-
छरी के छुअत फूल-छरी-सी छहरि परी ॥ १९९ ॥

---

* चैत।
† चाँदनी।
‡ पंखा।
§ निर्जन।
× खस।
+ सर्प।

छहरि परी = दुःखित हो गई। नहरि परी = नहर उसके सामने पड़ी। बिरह-बिष-ब्याल की लहरि परी = मानो बिरह-रूपी विषैले सर्प-दंश से मूर्च्छित हुई है। छोह-भरी = प्रेम-भरी। फूल-छरी = फूलों की छड़ी। छहरि परी = हाथ-पाँव फैलाए हुए गिर पड़ी।

सूधे हो सिखाई कै सखीन समुझाई होती,
देव स्यामसुंदर के सौंहे* समुहाती क्यों;
बिचरि बिचारे बीच बैरी होते बंधु कत,
बिरह की बेदन बिकल बिलखाती क्यों।
जगमगी जोन्ह ज्वाल-जालनि सों जारती क्यों,
जमजाई† जामिनी जुगंत-सम जाती क्यों;
क्वैलहाई क्वैलिया की काल-ऐसी कूकै सुने,
कौल की-सी कलिका कुँअरि कुँभिलाती क्यों ॥२००॥

जमजाई जामिनी = काल-रात्रि। जुगंत = युगांत। क्वैलहाई = कोयला-सी काली। क्वैलिया = कोयल। कौल (कौंल) = कमल।

बालम बिरह जिन जान्यौ न जनम-भरि,
बरि-बरि उठै ज्यों-ज्यों बरसै बरफ राति;
बीजन डुलावति सखीजन त्यों सीत हू मैं,
सौति के सराप तन तापनि तरफराति।
देव कहै सासनि ही अँसुवा सुखात, मुख
निकसै न बात ऐसी ससकी सरकराति;

---

* सामने उपस्थित क्यों होती।
† मृत्यु।

लौटि-लौटि परति करौंट खट-पाटी लै-लै,
सूखे जल सफरी-ज्यों सेज पै फरफराति ॥२०१॥

बरफ = ठंडी ओस । सराप (शाप) = दुर्वचन । ससकी = श्वासोच्छ्वास । सफरी = मछली ।

जागो न जोन्हाई लागी आगि है मनोभव की,
लोक तीनो हियो हेरि-हेरि हहरत है;—
बारि पर परे जलजात जरि बरि-बरि,
बारिधि ते बाड़व-अनल पसरत है।
धरनि ते लाइ झरि छूटी नभ जाइ, कहै
देव जाहि जोवत जगत हू जरत है;
तारे ... -ऐसे चमकत चहूँ ओर,
वैरी बिधु-मंडल भभूको-सो बरत है ॥२०२॥

बाड़व-अनल (बाड़वानल) = समुद्र की आग । चाँदनी नहीं छिटकी है, वरन् कामदेव की आग लगी है, (जिसके कारण से) तीनो लोकों को देख-देखकर हृदय घबराता है । तालाब के कमल विरहानल से जलकर पानी पर गिर पड़े (अर्थात् पानी में रहने पर भी वह उन्हें बचा न सका, क्योंकि स्वयं तप्त हो गया), अथच जल-जलकर समुद्र से बाड़वानल आगे फैलता है (अर्थात् समुद्र में नहीं समाता)। पृथ्वी से लाइ झरि (अग्नि की झार) जाकर आकाश में छूटी, जिसे देखते ही सारा संसार भी जल रहा है ।

साँसन ही सों समीर गयो अरु आँसुन ही सब नीर गयो ढरि*,
तेजु गयो गुन लै अपनो अरु भूमि गई तनु की तनुता करि;

* अग्नि अपने गुण (नेत्रों से रूपों की ग्रहण-शक्ति) को लेकर चली गई ।

देव जियै मिलिबे ही कि आस कि आसहू पास अकास रह्यो भरि,
जा दिन ते मुख फेरि हरे हँसि हेरि हियो जु लियो हरिजू हरि॥२०३॥

कवि इस छंद में (विरह के वश) पंचतत्त्व - निर्मित शरीर का विनाश वर्णन करता है।

समीर = वायु; यहाँ प्राण-वायु से प्रयोजन है। तेजु = अग्नि। तनुता = कृशता।

वे बतियाँ छतियाँ लहकैं दहकैं बिरहागिनि की उर आँचैं;
वा बँसुरी को पर्‌यो रसु री इन कानन मोहन मंत्र-से माँचैं;
कौ लगि ध्यान धरे मुनि लौं रहिए कहिए गुन बेद से बाँचैं,
सूझत ना सखि आन कछू निसि-दौस वई अँखियान मैं नाँचैं॥२०४॥

लहकैं = जलैं। माँचैं = छा जावैं, मचैं।

इभ - से भिरत, चहुँघाईं सों घिरत घन,
आवत झिरत झीने झरसों झपकि - झपकि;
सोरन मचावैं नचैं मोरन की पाँति चहुँ-
ओरन ते कौंधि जाति चपला लपकि - लपकि।
बिन प्रानप्यारे* प्रान न्यारे होत, देव कहैं
नैन बरुनीन रहे अँसुवा टपकि - टपकि;
रतिया अँधेरी, धीर न तिया धरति, मुख
बतिया कढ़ै न, उठैं छतिया तपकि - तपकि॥२०५॥

इभ-से = हाथी-समान। चहुँघाईं = चारो तरफ़ से। झिरत = गिरना, झिरना। झीने = पतले। झरसों = छोटी बिंदुओं की वर्षा करते हुए। कौंधि = चमक जाना। झपकि-झपकि = घिर-घिरकर।

---

* प्राण ही दूसरे हो जाते हैं।

आँसुन के सलिल सिरावती न छाती जो,
उसास लागि कामागि असम हो तो हीततो ;
केसरि कुसुम हू ते कोंरी जो न होतो, तौ
किसोरी सों कुसुम-सर कौनी भाँति जीततो।
देवजू सराहिए हमारो न्याउ छाऊ करि,
नाहिंत अहित चेत करतो जु चीततो ;
कोकिला के टेरत निकरि जातो जीव, जो
तिहारे गुन गनत उधेरत न बीततो ॥२०६॥

सखी नायक को नायिका की विरह-दशा सुनाती है।

उसास = दीर्घ श्वास। कामागि = कामाग्नि। कुसुम-सर = फूल के बाणवाला अर्थात् कामदेव। छाऊ = धैर्य। न्याउ = न्याय। चेत = चैत। चीततो = जो चितता। गुन गनत उधेरत = गुण गिनना और बिखेरना अर्थात् स्मरण करना। उधेरना का शाब्दिक अर्थ उकेलना है। कोंरी = साफ़।

कंत बिन बासर बसंत लागे अंतक - से,
तीर - ऐसे त्रिविध समीर लागे लहकन ;
सान - धरे सार - से चँदन घनसार लागे,
खेद लागे खरे* मृगमेद लागे महकन।
फाँसी - से फुलेल लागे गाँसी - से गुलाब अरु
गाज अरगजा लागे, चोवा लागे चहकन ;

---

* चंदन घनसार (कपूर) सान-धरे लोहे-से लगे, तथा मृगमेद के महकने से खरे खेद लगे (विशेष संताप हुआ)।

अंग - अंग आगि - ऐसे केसरि के नीर लागे,
चीर लागे जरन, अबीर लागे दहकन ॥२०७॥

अंतक = यमराज । सान-धरे सार = सान पर चढ़ा हुआ (तेज़ किया हुआ) लोहा । घनसार = कपूर । मृगमेद = कस्तूरी (मृगमद)। गाँसी = शस्त्रों के आगे का भाग । दहकन = लूका लगना । अरगजा = एक सुगंधित द्रव्य, जो केशर, चंदन, कपूर आदि को मिलाकर बनाया जाता है । चोवा = एक सुगंधित द्रव्य, जो कई सुगंधित वस्तुओं को मिलाकर, उसको जोश देकर रस टपकाने से बनता है । विशेषतया चंदन का बुरादा, देवदार का बुरादा, मरसे के फूल, केशर और कस्तूरी इसके बनाने में पड़ते हैं ।

खोरि लौं खेलन आवतीयै न तौ आलिन के मत मैं परती क्यों,
देव गुपालहि देखतीयै न तौ या बिरहानल मैं बरती क्यों;
माधुरी मंजुल अंब की बालि सुभालि-सी ह्वै उर मैं अरती क्यों,
कोमल कूकि कै कोकिल कूर करेजनि की किरचैं करती क्यों।

बरती = जलती । भालि-सी = बरछी की-सी । अरती = गड़ती । किरचैं = टुकड़े ।

(२३)

खंडिता

देव जुपै चित चाहिए नाह तौ नेह निबाहिए देह मरयो परै,
त्यों समुझाय सुझाइए राह अमारग जो पग धोखे धरयो परै;
नीके मैं फीके ह्वै आँसू भरौ कत ऊँची उसास गरो क्यों भरयो परै,
रावरो रूप पियो अँखियान भरयो सुभरयो उबरयो सु ढरयो परै।

खंडिता नायिका नायक से कहती है—

नायिका—यदि चित्त में पति की कामना हो, तो शरीर चाहे मर भी जाय, किंतु स्नेह निभाना चाहिए। जी यदि धोखे में भी बुरी राह पर पैर धरे, तो उसे समझाकर राह दिखलाना चाहिए।

नायक—अच्छी दशा में मन में फीकापन लाकर आँसू क्यों भरती हो, और ऊँची उसास से तुम्हारा गला क्यों भर-भर आता है?

नायिका—आप ही का रूप इन आँखों ने पान किया है। वह भरा है, सो भरा ही है, किंतु जो भरने से भी बचता है, वह ढरका पड़ता है। तात्पर्य यह है कि नायक अन्य स्त्री-रत है, जिससे व्यंग्य द्वारा नायिका कहती है कि उसका रूप नायिका के नेत्रों में इतना भरा है कि समाता तक नहीं है। जो रोने में आँसू गिरते हैं, वे मानो आँसू नहीं हैं, वरन् नायक का रूप है, जो नेत्रों में न समाकर बाहर ढरका पड़ता है। दोनो आदिम पदों में भी नायिका प्रकट में नायक से कोई शिकायत नहीं करती, वरन् यह दिखलाती है कि उसके कुमार्ग-रत होने के कारण जो नायिका का मन विचलित होता है, सो नायक का दोष न होकर उसी के मन का दोष है, और उसी मन को समझाना चाहिए।

हित की हितू री, नहिं तू री समुझावै आनि,
सुख दुख मुख सुखदानि को निहारनो;
लपने* कहाँ लौ बालपने की बिकल बातैं,
अपने जनहि सपनेहू न बिसारनो।

---

* याद करना, कहना।

देवजू दरस बिनु तरसि मर्‍यो हो, पग
परसि जियैगो मन - बैरी अनमारनो ;
पतिव्रतव्रती ए उपासी प्यासी अँखियन
प्रात उठि पीतम पिआयो रूप-पारनो* ॥२१०॥

स्वकीया खंडिता नायिका का कथन सखी प्रति है।

पग परसि = पैरों को छू करके। अनमारनो = न मारा जानेवाला, अर्थात् वश में न रहनेवाला। पारनो = पारण = किसी व्रत या उपवास के दूसरे दिन किया जानेवाला पहला भोजन और तत्संबंधी कृत्य।

आए हौ पैन्हि प्रभात हिए पर जानि परै कछु ज्योति उज्यारी,
आरसी लै छिन देखिए देवजू पाई कहाँ केहि नेह निहारी ;
कै बनमाल किधौं मुकुतावलि कंचन की कि रची रतनारी†,
स्याम कहूँ, कहुँ पीत, कहूँ सित, लाल कहूँ उर-माल तिहारी‡।

नायक ने अन्य रमणी के साथ रमण किया, ऐसा जानकर नायिका नायक पर इस विषय पर आक्षेप करती है। नायक के हृदय पर अन्य रमणी के मुक्तावली के चिह्न उपटे हुए होने से प्रौढ़ा नायिका व्यंग्य द्वारा नायक पर दोष लगाती है।

पैन्हि = पहनकर। नेह निहारी = स्नेह से देखा है।

---

* पीतम प्रात उठि पतिव्रतव्रती इन उपासी प्यासी अँखियन (आँखों को) रूप-पारनो पिआयो। प्रयोजन यह है कि नायक ने प्रातःकाल आकर नायिका को दर्शन दिया।

† या यह माल लाल सोने की बनी है। यह भी कहा जा सकता है कि रत्न और सोने से माल रची है।

‡ कस्तूरी के संसर्ग से काली, केशर से पीली तथा चंदन से शुभ्र अथवा लाल है।

आजु गोपालजू बाल-बधू सँग नूतन-नूतन कुंज बसे निसि,
जागर होत उजागर नैनन पाग पै पीरी पराग परी घिसि;
चोज के चंदन खोज खुले जहँ ओछे उरोज रहे उर मैं घिसि,
बोलत बात लजात-से जात हैं, आए इतौत चितौत चहूँ दिसि।

जागर = जागरण। उजागर = प्रकट (उजियाले के समान प्रकट)। चोज = थोड़ा (चमत्कार-पूर्ण उक्ति, जिससे लोगों का मनोविनोद हो। यहाँ चोज-शब्द का अर्थ 'थोड़ा' होता है। शब्द-पारिजात-कोष में इस शब्द का अर्थ 'थोड़ा' लिखा भी है)। इतौत = इत, उत (इधर-उधर) करते हुए।

(२४)

उपालंभ

मंजुल मंजरी पंजरी-सी ह्वै मनोज के ओज सम्हारति चीर न,
भूख न प्यास न नींद परै परी प्रेम अजोरन के जुर जीरन;
देव घरी-पल जात घुरी अँसुवान के नीर उसास-समीरन,
आहन जाति अहीर अहे तुम्हैं कान्ह कहा कहौं काहू कि पीर न।

दूती नायक (श्रीकृष्ण) के विषय में उपालंभ प्रकट करती हुई नायिका की वियोग-दशा का वर्णन करती है।

पंजरी = पिंजड़ा। आहन = लोहा।

पूतना को पय पान करो मनु पूत-नाते बिसवास बगाहत*,
देव कहा कहौं मातु-पिता-हित-बंधुन सों हितु नीके निबाहत;

---

* मानो पुत्र होने के नाते से उसके शरीर में विष के निवास-स्थान को खोजते हैं। सव्यंग्य कथन है।

कारे* हौ कान्ह निकारे हौ कीलि रहे गुन लीलि पै औगुन थाहत,
पन्नग† की मनि कीन्हे तुम्हैं, तुम पन्नग की किचुली कियो चाहत‡।

पूत-नाते = पुत्र के नाते से। वगाहत = पैठ करके। कीलि (कील-कर) = वह मंत्र, जिससे सर्प वश किया जाय। पै औगुन थाहत = किंतु अवगुणों की थाह लेते हो।

मोही मैं छिपे हौ मोंहिं छुवावत न छाँहौं, तापै
छाँह भए डोलत इते पै मोंहिं छरिहौ;
मच्छ सुनि कच्छप बराह नरसिंह सुनि,
बावन परसुराम रावन के अरि हौ।
देव बलदेव देव दानव न पावैं भेव,
को हौ जू कहौ जू जो हिये की पीर हरिहौ;
कहत पुकारे प्रभु करुना-निधान कान्ह,
कान मूँदि बौध ह्वै कलंकी काहि करिहौ॥ २१५॥

---

* हे कान्ह, तुम काले सर्प हो, और मंत्र द्वारा कीलकर (पर-वश होकर) निकाले गए हो, और गुण लील चुके हो, किंतु अवगुण की थाह लेते हो, अर्थात् बुरी बातों की सीमा तक पहुँचते हो। प्रयोजन यह है कि नायिका ने उन्हें सर्प के समान कीलकर अपने प्रयोजन से स्ववश किया, किंतु वह उसके वश में नहीं होते।

† सर्प।

‡ हम तो तुम्हें सर्प की मणि के समान सिर पर धारण किए रहे हैं, अर्थात् तुम्हारा अत्यंत सम्मान करते रहे हैं, किंतु तुम हम लोगों को सर्प की केंचुल की तरह समझते हो, अर्थात् हमको तुच्छ समझ करके छोड़ते हो।

रत्नावली-अलंकार है ।

नायिका नायक (भगवान्) के विषय में प्रत्यक्ष उपालंभ प्रकट करती है । कवि ने भगवान् के दसों अवतारों का वर्णन इस छंद में किया है ।

रावरे पाँयन ओट लसै पग गूजरी बार महावर ढारे,
सारी असावरी की झलकै, छलकै छबि घाँघरे घूम घुमारे;
आछो जू आओ दुरावो न मोहूँ सों देवजू चंद दुरै न अँध्यारे,
देखौ हौ कौन-सी छैल छिपाई तिरीछे हँसै वह पीछे तिहारे।

नायिका नायक को अन्य रमणी से संबंध रखने का दोष लगाती हुई उसके विषय में उपालंभ प्रकट करती है । नायक के पीछे वास्तव में कोई स्त्री है नहीं, केवल उसे चौंधियाने को ऐसा कथन है ।

ओट = आड़ । वह = अन्य रमणी से अभिप्राय है ।

मोंहि तुम्हें अंतरु गनें न गुरजन, तुम
मेरे, हौं तुम्हारी पै तऊ न पिघलत हौ ;
पूरि रहे या तन मैं, मन मैं न आवत हौ,
पंच पूँछि देखे कहूँ काहू ना हिलत हौ ।
ऊँचे चढ़ि रोई, कोई देत न दिखाई देव,
गातनि की ओट बैठे बातन गिलत हौ ;
ऐसे निरमोही सदा मो ही मैं बसत, अरु
मोंही ते निकरि फेरि मोंही न मिलत हौ ॥ २१७ ॥

पंच = (१) लोग-बाग ; (२) पंच ज्ञानेंद्रियाँ । गिलत हौ = पी जाते हो, अर्थात् प्रकट नहीं होने देते । ही = हृदय ।

केतकी के हेत कीन्हे कौतुक कितेक तुम,
पैठि परिमल मैं गए हौ गड़ि गात ही ;
मिले मल्लि-बल्लिन लवंग-संग हिले, दुरि
दाड़िमनि पिले पुनि पाँड़र की घात ही ।
कीन्ही रस-केली साँझ चूमत चमेली बाँझ,
देव सेवतीन माँझ भूले भहरात ही ;
गोद लै कुमोदिनि बिनोद मान्यो चहूँ कोद,
छपद छिपेहौ पदुमिनि में प्रभात ही ॥ २१८ ॥

नायक बहुतों से प्रेम करता है, इसका उपालंभ है। फूलों का वर्णन है। कितेक = कितने ही (बहुत-से)। परिमल = मकरंद। गात ही = शरीर-सहित (केवल मन ही नहीं)। पिले = घुसे। भहरात ही = ज़ोर से गिरते हुए। कोद = तरफ़। छपद = षट्पद (भौंरा)। सेवतीन = जंगली गुलाबों। मल्ली = बेला। बल्लिन = लताओं में। दुरि दाड़िमनि पिले = छिपकर अनारों में घुसे। छिपकर कहने का यह प्रयोजन है कि दाड़िम के तोड़ने में अधिक समय लगता है, सो एकांत में छिपकर उसे तोड़ा, जिसमें कोई दूसरा आकर साक्षी न हो जाय। जिस काल इतना परिश्रम करके दाड़िमों में घुसे थे, तब उसमें विराम करना था, किंतु ऐसा न करके भ्रमर ने फिर पाँडर (एक प्रकार की चमेली) में भी घात लगा रक्खी थी। चमेली बाँझ इसलिये कही गई है कि उसमें फल नहीं होते।

लागी प्रेम-डोरि खोरि साँकरी ह्वै कढ़ी आनि,
नेह सों निहोरि जोरि आली मन मानती ;
उतते उताल देव आए नँदलाल, इत
सोहैं भई बाल नव लाल सुख सानती ।

कान्ह कह्यो टेरिकै कहाँ ते आई, को हौ तुम,
लागती हमारे जान कोई पहिंचानती ;
प्यारी कह्यो फेरि मुख हेरिजू चलेई जाहु,
हमैं तुम जानत, तुम्हैं हूँ हम जानती ।। २१९ ।।

खोरि = गली । साँकरी = तंग । निहोरि = नम्रता-पूर्वक । सौहैं = सामने ।

नातो कहा तुमसों तुम को हौ जू कान्ह छुवौ कछु अंग न वाको ,
क्यों छुवैं अंग पै देखत हैं जु जराऊ तरौना* मैं रूप रवा को ;
कौने कह्यो हो बिजायँठो बाँधन यों गिरि जातो जु डोरु झबा को† ,
लाल परे लड़ बावरी बात‡ हौं ठंग गनोंगी न नंद बबा को ।

जराऊ = जड़ाऊ । रवा = रत्न का टुकड़ा । बिजायँठो = बजुल्ला (भूषण) । झबा (झब्बा) = एक ही में बँधे हुए रेशम या सूत

इस छंद में कवि सखी और नायक के परस्पर संवाद का वर्णन करता है । सखी का भाषण उपालंभ-सहित है ।

* कान में पहनने का आभूषण, जो फूल के आकार का गोल होता है । कर्णफूल; कनफूल ।

† इस प्रकार से बजुल्ला बाँधने को किसने कहा था, यदि झबा का डोर गिर जाता, तो कैसी होती ?

‡ लंगरपन की बात में पड़े हो, मैं नंद बाबा को ठंग न गिनूँगी । ठंग का प्रयोजन निरादर-सूचक अपमान से है ।

पहले तथा चौथे चरण में सखी के वाक्य हैं, और शेष दोनों में भगवान् के ।

आदि के बहुत-से तारों का गुच्छा, जो कपड़ों या गहनों आदि में शोभा बढ़ाने के लिये लटकाया जाता है।

केसरि सों उबटे सब अंग, बड़े मुकुतान सों माँग सँवारी ,
चारु सुचंपक-हार गरे, अरु ओछे उरोजन की छबि न्यारी ;
हाथ सों हाथ गहे कबि देवजू साथ तिहारे हौं आजु निहारी ,
हाहा हमारी सौं साँची कहौ वह कौन हो छोहरी छीबरवारी॥२२१॥

नायिका नायक को अन्य रमणी के साथ देखकर आक्षेप करती है।

छीबर = एक प्रकार की चूनरी।

कालिह ही साँझ उड़्यो कर माँझ ते देव खरो तब ते उर साल्यो ,
एक भली भई बाग तिहारे ही श्रीफल औ' कदली चढ़ि हाल्यो ;
बंचक बिंबनि चंचु चुभावत कुंज के पिंजर मैं गहि घाल्यो ,
हौं सुकहूँ नहिं राखि सकी सुकहूँ सुन्यो तैंहीं परोसिनि पाल्यो।

नायिका नायक के विषय में शिकायत करते हुए कहती है कि परोसिन ने नायक को शुक की तरह पाल लिया है, अर्थात् अपने वश में कर लिया है।

श्रीफल = बिल्वफल, बेल, नारियल। बिंबनि = कुँदरू - फल। घाल्यो = डाल दिया। चंचु = चोंच। सुकहूँ = शुक (तोता) को भी।

राधे कही है कि ते छमियो ब्रजनाथ जिते अपराध किए मैं ,
कानन तान न भूलत ना खिन आँखिन रूप अनूप पिए मैं ;
ओछे हिये अपने दिन - राति दयानिधि देव बसाय लिए मैं ,
हौंहीं असाधु बसी न कहूँ पल आधु अगाधु तिहारे हिए मैं॥२२३॥

तान = अलापना। खिन = क्षण। असाधु = असाध्वी, बुरी।

(२५)

मान

ऑंठन ते उठि पौठि पै बैठि कँधान पै ऐंठि मुर्‌यो मुख मोरनि ,
देव कटाच्छन ते कढ़ि कोप लिलार चढ़्‌यो चढ़ि भौंह मरोरनि ;
अंक में आए मयंकमुखी लई लाल को बंक चितै दृग-कोरनि ,
आँसुन बूड़्‌यो उसास उड़्‌यो किधौं मान गयो हिलकी की हिलोरनि ।

यहाँ मान का वर्णन है ।

मयंकमुखी = चंद्रमुखी । हिलकी की हिलोरनि = रुदनजन्य हिचकी की लहरों में ।

सखी के सकोच गुरु सोच मृगलोचनि
रिसानी पिय सों जु नेकु उन हँसि छुयो गात ;
देव वै सुभाय मुसुक्याय उठि गए यहि
सिसिकि-सिसिकि निसि खोई रोय पायो प्रात ।
कौन जानै बीर बिन बिरही बिरह-बिथा,
हाय-हाय करि पछिताय न कछू सोहात ;
बड़े-बड़े नैननि ते आँसू भरि-भरि ढरि
गोरो-गोरो मुख आजु ओरो सो बिलानो जात ॥२२५॥

कलहंतरिता नायिका का वर्णन है ।

बिलानो जात = नष्ट हुआ जाता है ।

इस छंद की व्याख्या 'मिश्रबंधु-विनोद' की भूमिका में है ।

प्यारी हमारी सौं आवौ इतै कबि देव कुप्यारी ह्वै कैसेक ऐए ,
प्यारी कहो पति मोसों अहो कहि प्यारी प्यो प्यार की प्यारी बुलैए;

कै वह प्यारु कै एतो कुप्यारु औ' न्यारी ह्वै बैठि कै बात बनैए ;
प्यारे पराए सों कौन परेखो* गरे परि कौलगि प्यारी कहैए।

मानिनी परकीया नायिका का वर्णन है। कौलगि = कब तक।

(२६)

सखी की शिक्षा

गौने कि चाल चली दुलही गुरु नारिन भूषन भेष बनाए,
सील सयान सबै सिखएरु सबै सुख सासुरेहू के सुनाए;
बोलियो बोल सदा अति कोमल जे मनभावन के मन भाए,
यों सुनि ओछे उरोजनि पै अनुराग के अंकुर-से उठि आए।
इंद्र ज्यों राज कुबेर ज्यों संपति त्यों दग दीपति लाज धरे री,
बालक बान दै बीरध पान दै अंजन सान दै क्यों निदरे री;
गोकुल मैं कुल तो कुल पै कहँ उज्जल तो-से सुभाय भरे री,
इंदु मैं आगि पियूष में ज्यों बिष देव त्यों तो मुख बात करे री।

तेरा इंद्र का-सा राज्य एवं कुबेर का-सा धन-समूह है, तथा तेरे नेत्र लाज की प्रभा धारण किए हुए हैं, किंतु तू उन पर अंजन-रूपी सान (बाढ़) धरकर क्यों उनका निरादर करती है। तेरा यह कर्म ऐसा है, जैसे वृद्ध का पान खाना (शृंगार करना), या बालकों को तीर देना। गोकुल में तो कुल (बहुत-से), कुल (वंश) हैं, किंतु तेरे समान उजले सुभाव से भरे हुए व्यक्ति कहाँ हैं ? ऐसी गुण-युक्ता जो तू है, उसके मुख से कड़ी बात का निकलना ऐसा ही है, जैसे चंद्रमा में अग्नि या अमृत में विष।

---

* हिसाब।

केतो न नागरि नौल-बधू तुम ही गुन-आगरि आई न गौने,
देव सकोचनि सोचति क्यों मृग-लोचनि लोचनि ह्वै ललचौने* ;
पी को पियूष सखी सुर-रूख ते दूखत सूखत या मुख मौने,
मान के मंदर रूप-समुंदर इंदु ते सुंदर सील सलौने† ।

नौल = नवल = नवीन ।

बैठी कहा धरि मौन भटू रँगभौन तुम्हैं बिन लागत सूनौ,
चातक लौं तुमहीं ररि देव चकोर भयो चिनगी करि चूनौ ;
साँझ सुहाग की माँझ उदौ करि सौति सरोजन को बन लूनौ,
पावस‡ ते उठि कीजिए चैत अमावस से उठि कीजिए पूनौ॥२३०॥

दूती नायिका को शिक्षा देती है ।

चूनौ = चुगाकर ।

---

* हे मृगनयनी ! तू ललचाने के योग्य नेत्रवाली होकर भी संकोचों से क्यों सोचती है ?

† हे सखी, इंदु ते सुंदर, रूप-समुंदर, सील सलोने, सुर-रूख पी को पियूष (अमृत-सा प्रेम) मान के मंदर या मुख मौने ते सूखत (अथच) दूखत । प्रयोजन यह है कि कल्पवृक्ष के समान एवं रूप के समुद्र पति का भी प्रेम तेरे मंदराचल-समान भारी मानभव मौन से सूखता एवं दूषित होता है । सखी मान-मोचनार्थ शिक्षा देती है ।

‡ 'पावस' से नायक के रोने से तथा 'चैत' से उसके प्रफुल्लित होने से अभिप्राय है ।

सखी नायिका को नायक के पास जाने के लिये उत्तेजित करती है, और उसका परिणाम यह दिखाती है कि नायक तुम्हारे विरह में जो अश्रु-धारा गिरा रहा है, उसे प्रफुल्लित करो, और अपने मुख-चंद्र से वहाँ के अँधेरे को मिटाकर प्रकाशमय करो ।

नेह लगाय निहोरे करावत नाइक नाह कहावत जैसे ,
साथ के सेंकत हाथ जरे घर कौन बुझावै मिले सब तैसे ;
वाहि न घूँघट की घट की सुधि अंग अनंग जरै पजरै-से,
क्यों* न गहै कर तू तिनके जिनकी करतूतिन के फल ऐसे ॥२३१॥

सखी नायक के विषय में उपालंभ प्रकट करती हुई स्वकीया नायिका को शिक्षा देती है । निहोरे = विनय । घट की = शरीर की । पजरै = झरना ।

रावरे रूप लला ललचानी ये जानी न काहू बिकानि औ' ऐसी ,
है सत-हीन सताई ततौ तुम संगति ते उतरी उत तैसी ;
न्याव निबेरो न हो यह नेह को जानत हौ तुमहूँ हम जैसी ,
देखिबे ही को भरौ सिसकी तिनते रिस की चरचा कहौ कैसी॥२३२॥

पहले दो पद नायक से कहे गए हैं, और अंतिम दो नायिका से । हे लला ! ये तुम्हारे रूप से ललचाकर ऐसी बिकी हैं कि कोई यह भेद भी नहीं जानता । जो तुमने इधर सताया (प्रेम की कमी से),

---

* तू (नायिका) तिनके (नायक के) कर (हाथ) क्यों न गहै (क्यों नहीं पकड़ती), जिनकी करतूतिन के (जिनके कर्मों के) फल ऐसे हैं ।

तू स्वामी से प्रेम लगा इस प्रकार विनती कराती है, मानो उनका तुझ पर कोई अधिकार ही नहीं, अथच वह तेरे स्वामी निष्कारण कहलाते हैं । तेरे साथ के लोग ऐसे हैं, मानो घर जलने पर बुझाने के स्थान पर तापते हैं । तेरे पति को तेरे घूँघट तथा अपने शरीर की भी याद नहीं है, और कामदेव से उसके अंग झरने के समान जल रहे हैं (प्रयोजन यह है कि आग ऐसी प्रचंड है कि झरना तक जल रहा है) । अश्रु-बाहुल्य से झरने का कथन और भी उचित है ।

उससे सत-हीन (सार-पदार्थ से रहित अर्थात् दुबली) हैं, और उधर स्वजनों के साथ से भी उतर गई हैं। हे सखी ! यह स्नेह (मान) के निबटाने का न्याय नहीं है, तुम जानती हो कि मैं जैसी (बड़ी उचित वक्ता) हूँ। जिसके देखने-भर के लिये रोया करती हो, उससे क्रोध की बात ही क्या है ?

बारियै बैस बड़ी चतुरै हौ बड़े गुन देव बड़ाऐ बनाई,
सुंदरै हौ सुघरै हौ सलोनी हौ सोल भरी रस रूप सनाई;
राजबहू बलि राजकुमारि अहो सुकुमारि न मानौ मनाई,
नैसिक नाह के नेह बिना चकचूर ह्वै जैहै सबै चिकनाई ॥२३३॥

अधमा सखी की कठिन शिक्षा मानिनी नायिका के प्रति है। नैसिक = थोड़ा (नैसर्गिक = शुद्ध स्वाभाविक)।

(२७)

काव्यांग

चोरी लगै चहुँओर चितौतु, कलंक लगै मग मैं पगु दै री,
दंतनि दाबि रहौं अँगुरी, अँगुरी कहुँ नेकु जु पै उघरै री;
देव दुरे रहिए हँसिए नहिं बैरिन बैस किए जग बैरी,
जौन घिरे रहिए घर मैं तौ घने घिरि आवत हैं घर घैरी ॥२३४॥

स्वभावोक्ति।

चितौतु = चितवत (देखने से)। दैरी = परी ! दए (देने से)। नेकु = थोड़ी। बैस = अवस्था (वयस); नवीन का अध्याहार है। घैरी = बदनामी करनेवाले।

आई हौं देखि बधू इक देव सुदेखतै भूली सबै सुधि मेरी,
राख्यो न रूप कछू बिधि के घर ल्याई है लूटि लुनाई कि ढेरी;

येबो अबै वहि ऐबे है बैस मरैंगी हराहरु बूँटि घनेरी,
जे-जे गनी गुन-आगरि नागरि ह्वै हैं ते वाके चितौत ही चेरी।

दूती का वचन। ग्रामीण नायिका।

येबो = एरी ! ऐबे है बैस = जवानी आनी है। लुनाई = लावण्य। ढेरी = समूह। बूँटि = पीकर। घनेरी = बहुतेरी। गनी = गिनी हुई, प्रख्यात। चितौत ही चेरी = देखते ही चेरी (दासी) हो जावेंगी। हराहरु = हलाहल, विष। यद्यपि वह गुण-आगरी नागरी नहीं है, तो भी ऐसी नायिकाएँ उसके सहज रूप से चेरी हो जायँगी।

कुंजनि के कोरे मन केलि रस बोरे लाल
तालन के खोरे बाल आवति है नित को;
असिय निचोरे कल बोलति निहोरे नेक
सखिन के डोरे देव डोलै जित-तित को।
थोरे-थोरे जोबन बिथोरे देति रूप-रासि,
गोरे मुख भोरे हँसि जोरे लेति हित को;
तोरे लेति रति दुति मोरे लेति गति-मति
छोरे लेति लोक-लाज चोरे लेति चित को॥ २३६॥

सखी नायक से नायिका का रूप वर्णन करती है।

कोरे = किनारे अर्थात् निकट। बोरे = डुबाए हुए। खोरे = गली। बाल = षोडश वर्ष की बाल्यावस्था की स्त्री; नवयौवना। कल = सुंदर। बिथोरे = फैलाती है, बिथराए देती है। तोरे = तोड़ती है, अर्थात् छीनती है। डोरे = डोरियाए, सखियों के साथ।

सखिन को सुख सुने सौतिन के महा दुख
होत गुरुजनन को गुन को गरूर है;

देव कहै लाख-लाख भाँति अभिलाष पूरि
पी के उर उमगत प्रेम-रस पूर है।
तेरो कल बोल कल भाषिनि ज्यों स्वाति-बुंद,
जहाँ जाइ परै, तहाँ तैसोई समूर है;
ब्याल-मुख बिष ज्यों, पियूष ज्यों पपीहा-मुख,
सीपी-मुख मोती, कदली-मुख कपूर है॥ २३७॥

कवि नायिका के मधुर भाषण तथा उसके गुणों का वर्णन करता है। छंद में उल्लेख अलंकार का अच्छा उदाहरण है।
समूर = मूल = आदिकारण।

जब ते कुँअर कान्ह रावरो कलानिधान
कान परी वाके कहूँ सुजस कहानी-सी;
तब ही ते देव देखी देवता-सी हँसति-सी,
खीझति-सी रीझति-सी रूसति रिसानी-सी।
छोही-सी छली-सी छीनि लीनी-सी छकी-सी छीन,
जकी-सी टकी-सी लगी थकी थहरानी-सी;
बीधी-सी बँधी-सी बिष-बूड़ी-सी बिमोहित-सी
बैठी वह बकति बिलोकति बिकानी-सी॥ २३८॥

प्रेमोन्मत्ता नायिका के भावों का वर्णन है। खीझति = झुँझलाती। छोही = अनुरागिनी। थहरानी = कंपित। टकी-सी = टकटकी-सी बाँधे है। समुच्चयालंकार है।

उज्ज्वल उज्यारी-सी झलमलाति झीनो सारी,
झाईं-सी दिपति देह-दीपति बिसाल-सी;

जोबन की जोतिन सों, हीरा लाल मोतिन सों
नख ते सिखा लौं मिलि एकै ह्वै महा लसी।
बोलनि हँसनि मंद चलनि चितौनि चारु-
ताई चतुराई चित चोरिबे की चाल-सी;
संग मैं सहेली सोन-बेली-सी नवेली बाल
रँगमगे अंग जगमगति मसाल-सी॥ २३६॥

नायिका की कांति का वर्णन। बिसाल = बड़ी। महा लसी = बहुत शोभित हुई। नवेली = नवीन स्त्री। सोन-बेली = कनक-लता। झीनी = बारीक। झाईं = ज्योति-पूर्ण आभा। देह-दीपति = शरीर की कांति। रँगमगे = रँग (प्रेम) में मग्न; ख़ूब रँगे हुए।

नारि जु बारिज-सी बिकसी रहै प्रेमकसी पिक-सी कल कूजै,
जा बड़ भाग के भौन बसी तेहि पीतम के चलिकै पग पूजै;
और कहा कहिए तेहि द्वार की दासी ह्वै देव उदास न हूजै,
आँखिन को सुख सुंदरि को मुख देखत हू दिखसाध न पूजै।

स्वकीया नायिका का वर्णन है।

बिकसी (विकसित) = प्रफुल्लित। कूजै = कोमल शब्द करती है। दिखसाध = देखने की महती इच्छा।

बूझै बड़े बवा नंद को बंस जसोमति माय को मायको बूझत,
बोलत बातैं बड़ी बन मैं मन मैं वृषभानु बवा सों अरूझत;
देव दबीं हम नेह के नाते न तौ पुरिखा इन बातन जूझत,
जीभ सँभारि न काढ़त गारि हौ ग्वारि गँवारि हमै हरि बूझत।

कुलगर्विता नायिका का वर्णन है।

मायको = नैहर। जूझत = लड़ते-झगड़ते। बूझत = समझते हो।

चितै चैत-चंद्रिका महल चंद्रिका ते छिपि
    चली चंद्रमुखी जोर जोबन बनक ते;
गुपित गलीन लखि लाज भय लीन सुनि
    लाल परबीन कर बीन की भनक ते*।
नूपुर अनूप सुर दाबत हथेरी उर,
    आवत न जात बनै आहट तनक ते;
सासुन की सकुच उसासन गनति, उठि
    संकित तनत भौंह किंकिनि-भनक ते† ॥ २५२ ॥

मुग्धा शुक्लाभिसारिका नायिका का वर्णन है।

आहट = आने-जाने का शब्द, जो चलने में पैर तथा दूसरे अंगों से होता है। उसासन गनति = श्वासों को गिनती है, अर्थात् श्वास के शब्द को भी छिपाती है कि कहीं कोई सुन न ले।

---

* चैत्र की चाँदनी को देखकर अपने चाँदनीवाले महल से जोबन के बनाव से (प्रसन्न) शशि-बदनी प्रवीण नायक के हाथ की वीणा की झनकार को सुनकर एवं छिपी हुई गलियों को देखकर हया और डर से लीन (तन्मय) होकर शीघ्रता से छिपकर चली।

† बिछुवा के अपूर्व स्वर को तथा हृदय को हथेली से दाबती हुई (चली तो), किंतु थोड़ी भी आहट के कारण आते-जाते नहीं बनता है। नायिका जेठियों के संकोच-वश अपनी साँसें तक गिनती थी (कि कहीं ज़ोर से साँस न निकल जाय), तथा किंकिणी की झनकार से भौंहें उठकर तन जाती थी।

इंदीवर*-नैनी इंदु-मुखी सुधा-बिंदु-हास,
इंदिरा-सी सुंदरि गुबिंद-चित-चाह-सी ;
नैननि उनैसी† लाज सैननि सुनैसी काज,
चैननि चुनैसी‡ नाह सोहैं कहूँ ना हसी§ ।
प्रीति भीति प्रगट प्रतीति रीति गुपित,
दिपति पति दीपति छिपति छबि माह सी ;
आगे-आगे आनन अनूप को उज्यारो रूप,
पाछे-पाछे प्यारो लग्यो डोलै परछाह-सी ॥ २४३ ॥

स्वकीयात्व की मुख्यता है ।

सोहैं = सामने । सैननि सुनैसी काज = संकेतों से ही काम समझ लेनेवाली । दिपति पति दीपति = पति के प्रकाश से स्वयं प्रकाशित होती है । छबि माह = छबि में ।

प्रानपती के प्रभात पयान प्रभाकर कोटि हुतो प्रतिकूल-सो,
रैहैं क्यों प्रान भले पहिले दिन दूसरो दौस दसा दुख-मूल-सो ;
नेह रच्यो बिरहागि तच्यौ प्रिय-प्रेम पच्यौ पजरै तन तूल-सो,
सासनि दूखि उसासनि रूखि गयो मुख सूखि गुलाब के फूल-सो ।

प्रवत्स्यत्पतिका नायिका का वर्णन है । दूखि = दूषि; दोष लगाकर । सबेरे प्राणेश्वर का चलना है, सो करोड़ सूर्य ख़िलाफ़ हो गए, अर्थात् इतना संताप हुआ, जितना करोड़ सूर्यों की शत्रुता से होता ।

* कमल ।

† घिरी ।

‡ चुनकर एकत्र करे ।

§ पति के सामने कभी हँसी भी नहीं ।

पहले ही प्रलय-समान दिन को प्राण क्योंकर रहेंगे (और यदि किसी भाँति रहे भी), तो दूसरे दिन की दशा दुख-सुख के समान होगी। अंतिम दोनो पद उत्कृष्ट हैं।

खरी दुपहरी हरी भरी फरी कुंज मंजु,
गुंज अलि-पुंजनि की देव हियो हरि जाति;
सीरे नद-नीर तरु सीतल गहीर छाँह,
सोवैं परे पथिक पुकारैं पिकी करि जाति।
ऐसे मैं किसोरी भोरी कोरी कुम्हिलाने मुख
पंकज से पाय धरा धीरज सों धरि जाति;
सौंहे घाम स्याम मग हेरति हँथेरी ओट,
ऊँचे धाम बाम चढ़ि आवति उतरि जाति ॥ २४५ ॥

उत्कंठिता नायिका का वर्णन है। गहीर = गंभीर; घनी। कोरी = अछूती। सौंहे = सामने। मग हेरति = मार्ग की प्रतीक्षा करती है। हँथेरी ओट = हाथ की आड़। दूर तक देखने को या सूर्य की किरण बचाने को।

कैधौं हमारियै बार बड़ो भयो कै रवि को रथ ठौर ठयो है*,
भोर ते भान की ओर चितौति घरी पल हू गनतौ न गयो है;
आवत छोर नहीं छिन को दिन को नहिं तीसरो याम छयो है,
पाइए कैसेक साँझ तुरंतहि देखु री दौस दुरंत भयो है ॥२४६॥

नायिका नायक की प्रतीक्षा करती है। बार = बारी = दफ़ी। छयो है = व्यतीत हुआ है।

---

* या तो (दिन) मेरी ही बारी में बड़ा हो गया है, या सूर्य का रथ एक ही स्थान पर रुक गया है।

आवन सुन्यौ है मनभावन को भावती ने,
 आँखिन अनंद-आँसू ढरकि-ढरकि उठैं;
देव दृग दोऊ दौरि जात द्वार-देहरी लौं,
 केहरी-सी साँसैं खरी खरकि-खरकि उठैं।
टहलैं करति टहलैं न हाथ-पाँय, रंग-
 महलैं निहारि तनी तरकि-तरकि उठैं;
सरकि-सरकि सारी, दरकि-दरकि आँगी,
 औचक उचौहैं कुच फरकि-फरकि उठैं॥ २४७॥

भावती = प्रिया। खरी = तीक्ष्ण। खरकि-खरकि = गले से आवाज़ निकलना (श्वासोच्छ्वास); यह 'खड़ाका'-शब्द से बना है। टहलैं करति टहलैं न हाथ-पाँय = गृह-काज करने में हाथ-पैर स्तब्ध हो जाते हैं, अर्थात् मिलन की उमंग से गृह-काज में जी नहीं लगता। औचक = अकस्मात्। उचौहैं = उभरे हुए।

धाई खोरि-खोरि ते बधाई पिय आवन की,
 सुनि-सुनि कोरि-कोरि भावनि भरति है;
मोरि-मोरि बदन निहारति बिहार-भूमि,
 घोरि-घोरि आनँदघरी-सी उघरति है।
देव कर जोरि-जोरि बंदत सुरन गुरु-
 लोगनि के लोरि-लोरि पायन परति है;
तोरि-तोरि माल पूरै मोतिन की चौक,
 निवछावरि को छोरि-छोरि भूषन धरति है॥२४८॥

आगत्पतिका नायिका का वर्णन है। वीप्सा की बहार है।

खोरि-खोरि = गली-गली से । कोरि-कोरि रस = करोड़ों प्रकार के रस । लोरि-लोरि = लोट-लोट करके । घोरि-घोरि = घुल-घुलकर ।

प्रान-से प्रानपती सों निरंतर अंतर अंतर पारत हे री,
देव कहा कहौं बाहे रहूँ घर बाहेर हूँ रहै भौंह तरे री ;
लाज न लागति लाज अहे तोहि जानो मैं आज अकाजिनि ए री,
देखन दे हरि को भरि नैन घरी किन एक सरीकिनि मेरी ॥२४६॥

मध्या नायिका की लाज का वर्णन है । स्वयं नायिका अपनी लाज को संबोधित करती हुई कथन करती है । अंतर अंतर = अंतःकरण से भेद । बाहे रहूँ घर = घर में तुझे (लाज को) लादे रहती हूँ । बाहेर हूँ रहै भौंह तरे री = बाहर भी मेरी भौंहें तरे (नीचे) रहती हैं । सरीकिनि = साथिन ; संग में रहनेवाली । 'शरीक'-शब्द से बना है ।

साँझ ही स्याम को लेन गई सु बसी बन में सब जामिनि जायकै,
सीरी बयारि छिदे अधरा उरझो उर झाँखर झार मँझायकै ;
तेरीसि को करिहै करतूति हुती करिबे सुकरी तैं बनायकै,
भोर हीं आई भटू इत मो दुखदाइनि काज इतो दुख पायकै ।

अन्यसंभोगदुःखिता नायिका का वर्णन है ।

दुखदाइनि काज = मुझ दुःख देनेवाली के निमित्त (नायिका के निमित्त) ।

आजु मिले वहुतै दिन भावते भेंटत भेंट कछू मुख भाखौ,
कै सुखभूषन मो भुज बाँधि भुजा भरिकै अधरा-रस चाखौ ;

लीजिए लाल उढ़ाय जरी पट कीजिए जू जिय जो अभिलाखौ ,
प्यारे हमैं तुम्हैं अंतर पारत हार उतारि इतै धरि राखौ ॥२५१॥

इस छंद में गणिका का वर्णन तो है ही, पर प्रौढ़ा खंडिता का भी अर्थ निकल सकता है । हे दिन-भावते (दिन में, न कि रात में मिलनेवाले), आज बहुत ही मिले । भुज-भूषण वास्तव में न थे, वरन् अन्य नायिका के भुज-भूषण आलिंगन के कारण नायक के भुजों में गड़कर अंकित थे, सो नायिका उनका इशारा करती हुई उनके पाने की प्रार्थना करके व्यंग्य से कोप दिखलाती है । अन्य नायिका का जरी पट पीत पट से भ्रम-वश बदल आया था, जिसका इशारा है । हार भी वास्तविक नहीं है, वरन् अन्यत्र के आलिंगन से उपटा हुआ है ।

गणिका-वर्णन । भावते = हे प्यारे ! भेंट = उपहार । भुज-भूषण = बजुल्ला आदि भुजाओं पर पहनने के भूषण ।

आजु गई हुती कुंजन लौं बरसे उत बुंद घने घन घोरत* ,
देव कहै हरि भीजत देखि अचानक आइ गए चित चोरत ;
पोटि भटू तट ओट बटो के लपेटि पटी सों कटी पटु छोरत ,
चौगुनो रंग चढ़ो चित मैं चुनरी के चुचात लला के निचोरत ।

गुप्ता नायिका का वर्णन । भटू = सखी (संबोधन-प्रयोग, प्रेम से संबोधित करना) । पोटि = पुटया(पुचकार)कर । ओट बटो = बट-वृक्ष की आड़ में । पटी = पट, वस्त्र । पटु = वस्त्र (पटुका) ।

---

* घोरते (गरजते) हुए घन (मेघ) । घोरना देशस्थ शब्द है, जिसका अर्थ सोने में गले के बोलने का है ।

खोरि मैं खेलत पीठि दिए तऊ नेह कि डीठि छुटै नहिं छूटी,
देव दुहूँ को दुहू छलु पायो सु कौलमुखी लखे नौल बधूटी*;
क्यों बिसरै निसरै मन ते ब्रजजीवन की निजु† जीवन बूटी,
बाल के लाल लई चिहुँटी रिस के मिस लाल सौं बाल चिहूँटी।

वर्तमान गुप्ता नायिका का वर्णन है। खोरि = छोटी गली। कौल = कमल। नौल = नवल; नवीन। ब्रजजीवन = ब्रज के जीवन (कृष्ण)। चिहूँटी = चिपट गई।

(२८)

उद्धव-संवाद

ऊधो आए ऊधो आए, स्याम को सँदेसो लाए,
सुनि गोपी-गोप धाए धीर न धरत हैं;
चौरी लगि दौरीं उठि भौंरी‡ लौं भ्रमति मति,
गनति न ताऊ गुरु लोगनि डरति हैं।
ह्वै गईं बिकल बाल बालम-बियोग भरीं,
जोग की सुनत बात गात यों जरत हैं;
भारी भए भूषन सँभारे न परत अंग,
आगे को धरत पग पाछे को परत हैं॥ २५४॥

चौरी लगि = चबूतरे के पास। ताऊ = पिता का बड़ा भाई।

---

* कमल-वदनी नव-बधू के देखने से दंपति ने एक दूसरे का छल जान लिया।

† मुख्य करके।

‡ भौंरी (काठ का खेलवाला यंत्र) के समान उनकी बुद्धियाँ भ्रमती हैं। वे न तो ताऊ को गिनती हैं, न (अन्य) गुरुजनों को डरती हैं।

छाँड़्यो सुख-भोग मान खाँड़्यो गुरुलोगनि को,
माड़्यो हम योग या बियोग के भगल मैं;
चेली कै सहेली बनि डोलति अकेली गहि,
सेली भुज बेली और सेली है न गल मैं।
देव पहिले ही पाइ फारि चितु फार्‌यौ हितु,
फारखती चाहैं कान्ह फारिबो अगल मैं*;
नाथ सों सँदेसो सूधो आदेस कहै को ऊधो,
अलख जगावैं दाबैं कूबरी बगल मैं† ॥ २५५ ॥

गोपियाँ अपनी विरक्त दशा का वर्णन उद्धव से करती हैं।

खाँड्यो = खंडित किया। मान = प्रतिष्ठा। माड्यो = मंडित किया, सँवारा। भगल = छल। सेली = पहनी। ही = हृदय। फारखती (फ़ारिग़ ख़ती) = लिखा-पढ़ी करके इला = हिदा होना। अगल = पृथक्। आदेस = फ़क़ीरी आज्ञा। अलख = अदृष्ट, ईश्वर। फ़क़ीर लोग भिक्षा माँगते में अलख-अलख कहा करते हैं।

जोगहि सिखैहैं ऊधौ जो गहि कै हाथ हम,
सो न मन हाथ ब्रजनाथ साथ कै चुकीं;

---

* देव कवि कहता है कि हम गोपियों ने पहले ही भगवान् को चित्त फाड़कर पाकर अपना (कुटुंबियों से) प्रेम फाड़ डाला, किंतु भगवान् हमसे फारखती चाहते हैं, जिस फारखती को हम पार्थक्य में फाड़ेंगी, अर्थात् फारखती को क़ायम न रक्खेंगी।

† छंद का प्रयोजन यह है कि हम गोपियाँ तो वियोग ही को प्रेम-पूर्ण योग मानती हैं, सो हमें अन्य यौगिक क्रियाओं की आवश्यकता नहीं। स्वयं भगवान् बग़ल में कूबरी दाबकर अलख जगावें।

देव पंचसायक नचाई खोलि ´चन में,
पंचहूकरनि पंचामृत सो अचै चुकीं* ।
कुल - बधू ह्वै कै हाय कुलटा कहाईं, अरु
गोकुल मैं, कुल मैं कलंक सिर लै चुकीं;
चित होत हित न हमारी नित ओर, सोतौ
वाही चितचोरहि चितौत चित दै चुकीं† ॥ २५८ ॥

कै चुकीं = कर चुकीं । पंचहूकरनि = पंचभूत के भागों का मिलना (सृष्टि-प्रकरण का एक सिद्धांत) । पंचीकरणविधि । एक-एक तत्त्व के पाँच-पाँच भाग होकर कपिल का सांख्यशास्त्र बना है। उसी को पंचीकरण कहते हैं ।

अंजन सों रंजित निरंजनहि‡ जानैं कहा,
फीको लगै फूल रस चाखे ही जु बौड़ी को§ ;

---

* हमें कामदेव ने प्रकट रूप से पंचों में नचाया है, और पंचीकरण विधि को हम पंचामृत के समान पी चुकी हैं ।

† हमारी ओर नित्य न तो चित्त होता है न हित, क्योंकि हम वह चित्त देखते ही उस चित्तचोर को दे चुकी हैं । यह भी अर्थ है कि हित चित्त में होता है, किंतु वह चित्त हमारी ओर नहीं है ।

‡ निर्गुण ब्रह्म को । अंजन का आँखों से हटाना ।

§ जो अंजन से सुशोभित हैं, वे निरंजन को (ईश्वर को, अंजन के अलग करने को) क्या जानें, क्योंकि जिसने बौड़ी (अंगूर के मद) को पान किया है, उसे पुष्प-रस फीका लगैगा ही । प्रयोजन यह है कि जो राग में रत है, वह राग छोड़कर ईश्वर में कैसे मन लगावे, क्योंकि वह राग अध्यात्मज्ञान से श्रेष्ठतर भी है। भाव यह है कि भक्ति ज्ञान से उत्तर है ।

तूरज* बजाय सूर सूरज को वेधि जाय,
ताहि कहा सबद सुनावत हौ डौड़ी को†।
ऊधो पूरे पारखी हौ परखे बनाय देव,
वार ही‡ पै बोरो पैरवैया धार औड़ी§ को;
मनु मनिका+ दै हरि-हीरा गाँठि बाँध्यो हम,
तिन्हैं तुम बनिज बतावत हौ कौड़ी को ॥ २५७ ॥

ऊधौ का वर्णन है। अंजन = काजल; अध्यात्म अर्थ में माया। रंजित = भूषित। परखे बनाय = भली भाँति परखे गए हो।

जौ न जीमैं प्रेम तब कीजै व्रत-नेम, जब
कंज-मुख भूलै तब संजम बिसेखिए;
आस नहीं पी की तब आसन× ही बाँधियत,
सासन कै सासन को मूँदि पति पेखिए।

---

* तुरही।

† जो सूर (युद्ध-वीर) तुड़ही बजाकर सूर्य-मंडल को बेध जाता है (युद्ध में प्राण भी दे सकता है), उसे डौड़ी (ढिंढोरा) के शब्द से कैसे डराया जा सकता है, क्योंकि जब उसे मरण का भी भय नहीं, तब साधारण डौड़ी का भय क्या होगा?

‡ इसी किनारे पर।

§ तिरछी, उलटी।

+ गुरिया, जवाहरात का टुकड़ा।

× योग के ८४ आसन।

नख ते सिखा लौं सब स्याममई बाम भई ,
बाहर लौं भीतर न दूजो देव देखिए ;
जोग करि मिलैं जो बियोग होय बालम, जु
ह्याँ न हरि होयँ तब ध्यान धरि देखिए ॥ २५८॥

सासन कै सासन को = श्वासों पर आज्ञा चलाकर, अर्थात् श्वासों को स्ववश करके। प्राणायाम पर उक्ति है।

कुबिजा कितेव दुबिजा के रहे आप देव,
अंस अवतारी अब तारी जिन गनिका* ;
आरति न राखत निवारत नरक ही ते,
तारत तिलोक चरनोदक की कनिका।
उनके गुनानुबाद तुमसों सुने हैं ऊधो,
गोपिन को सूधो मत प्रेम की जवनिका ;
कुंजन मैं टेरिहैं जू स्याम को सुमिरि नीके,
हाथ लै न फेरिहैं सुमिरिनी के मनिका ॥२५६॥

कितेव = धूर्त; छल करनेवाले (यह 'कितव'-शब्द से बना है)। दुबिजा = दुरगी, जारजा। कनिका = कण। जवनिका = नाटक का परदा। सुमिरिनी = छोटी माला।

कंसरिपु अंस अवतारी जदुबंस कोई,
कान्ह सों परमहंस कहै तौ कहा सरो ;

---

* कैतव (छल) करके दुरगी कुब्जा के यहाँ अंशावतारी स्वयं वह भगवान् अब रहे, जिन्होंने गणिका को तारा था।

हम तो निहारे ते निहारे ब्रजबासिन मैं,
देव मुनि जाको पचि हारे निसि-बासरो।
श्रम न हमारे जप संजम न करैं कछू,
बहि गयो जोग जमुना-जल बिलासरो;
गोकुल गोसायनि परम सुख-दायनि,
श्रीराधा ठकुरायनि के पायनि को आसरो ॥२६०॥

कहा सरो = क्या हुआ। पचि हारे = परिश्रम करते-करते हार गए (थक गए)। निहारे ते निहारे = ग़ौर करके देखने से दृढ़ता-पूर्वक देखा।

(२६)

देश-जाति

छिति कैसी छोनी रूप-रासि की पकोनो गढ़ि
गढ़ी बिधि सोनी गोरी कुंदन-से गात की;
देव दुति दूनी-दूनी दिन-दिन होनी और
ऐसी अनहोनी कहूँ कोई दीप सात की॥।
रति लागै बौनी जाकी रंभा रुचि पौनी लोच-
ननि ललचौनो मुख-जोति अवदात की;
इंदिरा अगौनी इंदु इंदोबर बौनी† महा-
सुंदरि सलौनी गज-गौनी गुजरात की॥ २६१॥

॥ देव कहता है कि गुजरात-वधू की दूनी-दूनी कांति नित्य ही बढ़ती है, यहाँ तक कि सातो द्वीपों (की नायिकाओं) में और कहीं ऐसी नहीं होनी है।

† चंद्रमा में कमल बोनेवाली, अर्थात् यदि चंद्र की उज्ज्वलता में कमल की कोमलता मिलाइए, तो उसके मुख की समता हो। लक्ष्मी उससे इतनी हेय है कि उसकी अगवानी को खड़ी रहती है।

प्रतीप की मुख्यता है ।

छिति = पृथ्वी । छोनी = लड़की (पृथ्वी की अर्थात् जानकी)। पकोनी = पकी हुई । सोनी = सुनार (स्वर्णकार)। बौनी = बावन अंगुल की स्त्री। पौनी = तीन चौथाई; हीनता से अभिप्राय है । अगौनी = अगवानी (पेशवाई) । गज-गौनी = गज-गामिनी । अवदात = शुभ्र ।

जोबन के रंग भरी ईंगुर-से अंगनि पे,
एँड़िन लौं आँगी छाजै छबिन की भीर की;
उचके उचोहैं कुच झपे झलकत झीनी
झिलमिली ओढ़नी किनारोदार चीर की।
गुलगुले गोरे गोल कोमल कपोल, सुधा-
बिंदु बोल इंदु-मुखी नासिका ज्यौं कीर की;
देव दुति लहराति छूटे छहरात केस,
बोरी जैसे केसरि किसोरी कसमीर की ॥ २६२ ॥

काश्मीर देश की युवती का वर्णन है ।

छाजै = शोभै । कीर = तोता ।

तीनिहू लोक नचावति ऊक मैं मंत्र के सूत अभूत गती है*;
आपु महा गुनवंत गुसायनि पायनि पूजत प्रानपती है;

---

* टूटते तारे की एक प्रकार की जादू करके वह तीनो लोकों को नचाती है। ऊक का कोशस्थ अर्थ उल्का है। इसे जादू के मंत्रों के संबंध का छू के समान ध्वन्यात्मक शब्द भी मान सकते हैं। प्रयोजन यह बैठेगा कि भानमती की जादू-पूर्ण ध्वनियों से तीनो लोक नाचते हैं।

पैनो चितौनि चलावति चेटक को न कियो बस योगि-जती है,
कामरू-कामिनि काम-कला जग-मोहनि भामिनि भानमती है॥२६३॥

कामरू (आसाम) देश की जादूगरनी का वर्णन है।

ऊक = उल्का ; टूटता तारा। अभूत = जो पहले न हुआ हो, अद्भुत। भानमती = जादूगरनी। चेटक = जादू।

पातरे अंग उड़ै बिन पंखन कोयल-बानि चबानि बिरी की,
जोबन रूप अनूप निहारि कै लाज मरै निधिराज सिरी की ;
कौंल-से नैन कलानिधि-सो मुख कोटि कला गुन की गहिरी की*,
बाँस के सीस अकास पै नाचति को न छक्यो छबि सोनचिरी की।

नट की स्त्री (नटिनी) का वर्णन है। बिरी = बीड़ा। निधिराज = कुबेर। सिरी = श्री = लक्ष्मी। सोनचिरी = सोने की चिड़िया, अर्थात् नटिनी। लाज मरै निधिराज सिरी की = राज्य-श्री की निधि लाज से मरती है; अथवा उसे देखकर कुबेर की लक्ष्मी की लाज मरे (भंग हो)।

माखन-सो मन दूध-सो जोबन है दधि ते अधिकै उर ईठी,
जा छबि आगे छपाकर छाँछ बिलोकि सुधा बसुधा सब सीठी ;
नैनन नेह चुवै कहि देव बुझावति बैन बियोग अँगीठी,
ऐसो रसीली अहीरी अहो ! कहो क्यों न लगै मनमोहनै मीठी।

अहीरिन (ग्वालिन) का वर्णन है। ईठी = इष्ट। सीठी = फीकी।

---

* उस गुण-गंभीरा की करोड़ कलाएँ हैं।

ज्यों बिन ही गुन अंक लिखै घुन यों करिकै करता कर झार्‌यो* ,
वारिए कोरि सची रति रानी इतो खतरानी को रूप निहार्‌यो ;
देव सुबानक देखि अचानक आनकहूँन को आनक मार्‌यो† ,
लाज लचै तिय आन रचै तौ पचै बिन काज बिरंचि बिचार्‌यो‡ ।

कोरि = कोटि = करोड़ ।

देव दिखावति कंचन-सो तन औरन को मन तावै अगोनी ,
सुंदरि साँचे में दै भरि काढ़ी-सि आपने हाथ गढ़ी बिधि सोनी ;
सोहति चूनरि स्याम किसोरी कि गोरी गुमान-भरी गज-गोनी ,
कुंदन लीक कसौटी में लेखीसि देखी सु नारि सुनारि सलोनी ।

---

* जैसे विना अक्षर लिखने का ज्ञान रखते हुए भी घुन कभी-कभी काटते-काटते कोई अक्षर बना जाता है (जिसे घुणाक्षर-न्याय कहते हैं), उसी प्रकार अन्यों को बनाते-बनाते विना खतरानी-सी रूपवती बनाने की शक्ति रखते हुए ब्रह्माजी अकस्मात् उसे बनाकर ऐसे प्रसन्न हुए कि आगे ऐसा रूप बना सकने में अपने को असमर्थ पाकर तथा उससे बुरा रूप बनाने में लज्जा बोध करके उन्होंने अपने हाथ ही झाड़ दिए (वह निर्माण-कार्य से निवृत्त हो गए) ।

† देव कवि कहता है कि (ब्रह्मा ने) खतरानी की अच्छी बनक अकस्मात् देखकर लाए जानेवालों का आनना (लाना) बंद कर दिया (आगे से सृष्टि-रचना ही छोड़ दी, जिससे संसार में पैदा होनेवालों का पैदा होना नष्ट हो गया) ।

‡ यदि बेचारा ब्रह्मा और स्त्री बनावे, तो वह लज्जा से झुक जाय, अथच अनावश्यक कष्ट उठावे (क्योंकि खतरानी के समान रूपवती उससे अन्य रामा बन ही नहीं सकेंगी) ।

जाति (सुनारिन) का वर्णन है । तावै = तपावै । बिधि-सोनी = ब्रह्मा-स्वर्णकार ने । अगोनी = ऐसी स्त्री, जो गौने नहीं गई है । अगोनी अँगेठी को भी कहते हैं । प्रयोजन यह है कि अगोनी में औरों का मन तपाती है ।

एँड़िन ऊपर घूमत घाँघरो तैसिए सोहति सालू कि सारी,
हाथ हरी-हरी छाज़ै छरी अरु जूती चढ़ी पग फूँद फुँदारी ;
ऊँचे उरोज हरा घुँघचीन के हाँ कहि हाँकति बैल निहारी,
गात नहीं दिखराय बटोहिन बातन हीं बनिजै बनिजारी ।।२६८।।

बनजारी-जाति की स्त्री का वर्णन है । सालू = लाल कपड़े से प्रयोजन है । बनिजै = ख़रीदती है । छाजै (छाजना) = शोभा देती है ।

सींची सुधा-बूंदन सों कुंदन की बेलि, किधौं
साँचे भरि काढ़ी रूप ओपनि भरति है ;
पोखी पुखरागन बपुख नख सिख कर
चरन अधर बिद्रुमन ज्यों धरति है ।
हीरा-सो हँसनि मोती-मानिक-दसन स्वेत,
स्यामता लसनि दृग हियरा हरति है ;
जोबन जवाहिर सों जगमग होइ, जोइ
जौहरी की जोइ जग जौहर करति है ।। २६९ ।।

जौहरी की स्त्री का वर्णन है । उसी प्रकार रत्नों के कथन हैं । बपुख (वपुष) = शरीर । बिद्रुमन = प्रवालों = मूँगों । स्यामता = कालापन । यहाँ नीलम-मणि-रूपी आँखों की स्यामता से प्रयोजन है । जोइ (जाया) = स्त्री ।

अरगजे भीजी मरगजे बागे बनी ठनी,
हाट पर बैठी अति ही सुघरपन सों;
इंदु-से बदन मृगमद-बुंद बेंदी भाल,
झलक कपोल गोल दूने दरपन सों।
मैन-मद छाके नैन देव मुनि मोहैं सैन,
सोहैं सटकारे बार कारे सरपन-सों;
बंधु किए मधुप मदंध किए बंधु जन,
बँध्यो मन गंधी की सुगंध-झरपन सों॥ २७०॥

मृगमद = कस्तूरी। मैन-मद = मयन अर्थात् काम के मद में। मरगजे = मले। सुघरपन = चतुराई। बंधु किए मधुप = भौंरों को बंधु (बँधुआ = क़ैदी) किया। सुगंध के वश हो भौंरे वहीं ठहर गए। बागे = पहनने का कपड़ा। दूने दरपन सों = दर्पण से दूने चमकनेवाले। झरपन सों = झपटों से। सैन = आँखों का इशारा।

दंपति एक ही सेज परे पग पींडुरी दाबि दुहूँ को रिझावति,
आपने ओछे उठोहैं कठोर उरोजन को मलै एँड़ी मिलावति;
भौंहैं उमेठि रहैं ठकुराइनि ठाकुर के उर काम जगावति,
लौंड़ी अनोखी लड़ाइते लाल की पाँय पलोटै कि चोटै चलावति।

तिल है अमोल लोल-नैनी के कपोल गोल,
बोलत अमोल जन बारि फेरियत है;
सोभा सुने जाकी कबि देव कहै कौन को न
होत चित चीकनो चतुर चेरियत है।

घाट बाट हू में घट निपट बटोहिन के,
नेक ही निहारे नेह-भरे हेरियत है*;
सरस निदान ताके दरस की कौन कहै,
पौन हूँ के परस परोसी पेरियत है† ॥ २७२ ॥

तेलिन का वर्णन है। बारि फेरियत है = पानी फेरते हैं, अर्थात् नज़र उतारते हैं। निदान = आदिकारण। पौन = पवन।

---

* राहगीरों के हृदयों को तेरे थोड़ा ही देखने से हम ख़ूब स्नेह-पूर्ण पाते हैं।

† कोल्हू तो सरसों आदि को दबाकर पेरता है, किंतु तेलिन पड़ोसियों को अपनी वायु के स्पर्श-मात्र से पेर डालती है।

अधिक अभेद रूपक के भाव की झलक है।

विनीत वक्तव्य *

भारतीय भूपालों में सर्वश्रेष्ठ, सहृदय हिंदी-हितैषी, काव्य-कला के कुशल पारखी, भारतीय भाषाओं की महारानी मंजु-मधुर व्रजबानी के परम प्रेमी, देव-पुरस्कार के प्रसिद्ध प्रदाता श्रीसवाई महेंद्र महाराजा श्रीवीरसिंहजू देव ओरछाधिपति की सेवा में—

धन्यवाद

मम कृति दोस भरी खरी, निरी निरस जिय जोइ—
है उदारता रावरी, करी पुरसकृत सोइ ।

× × ×

मधु मिलन

सुधा†-जनक जुग-मधु-मिलन सुमन-खिलन मधु माहिं ;
उर-उपबन मैं सुरस-कन सुख-सौरभ सरसाहिं ।

× × ×

व्रजबानी

बर व्रजबानी-पदुमिनी प्राचि-ओरछा-ओर—
लखि तमहर प्रिय बीर-रबि खिली पाइ सुख-भोर ।
व्रजबानी-घन-प्रगति-घन देस-गगन-बिच छाइ—
दियौ दयालु महेंद्रजू जन-मन मोर नचाइ ।

× × ×

---

* ओरछा में, वीर-वसंतोत्सव के वक्त, दुलारे-दोहावली पर देव-पुरस्कार प्राप्त कर लेने के उपरांत, पुरस्कार-प्रदाता को, दोहावलीकार द्वारा दिया गया धन्यवाद ।

† ओरछाधिपति की ७½ वर्ष की कन्या और उसी उम्र की सुधा-पत्रिका ।

आलोचकों के प्रति

संतत मद हू तैं अधिक पद कौ मद सरसाइ ;
वाहि पाइ ❀ बौराइ, पै याहि पाइ † बौराइ।

तो भी

जे पद मद की छाकु छकि बोले अटपट बैन,
सोऊ सुजन कृपा करैं, भरैं नेह सौं नैन।

× × ×

अंतिम प्रार्थना

नेह - नेह दै जो दियौ साहित - दियौ जगाइ,
सतत भरयौई राखियौ, जगत जोति जगि जाइ ।

श्रीमान् का प्रेम-पूर्वक प्रदत्त यह प्रसिद्ध पुरस्कार प्राप्त करके मैं अपने को गौरवान्वित समझता और इसके लिये श्रीमान् को सादर धन्यवाद देता हूँ । किंतु श्रीमान् को विदित ही है कि मेरा तो सर्वस्व ही सरस्वती माता पर न्यौछावर है । फिर यह बानी देवी का प्रसाद तो ख़ास तौर पर उन्हीं को समर्पण होना चाहिए । अतएव मैं आज इस पुरस्कार को भी सहर्ष एक ऐसी शुभ साहित्यिक सेवा में लगाने को उद्यत हूँ, जिसकी आवश्यकता का अनुभव सुदीर्घ समय से सभी सहृदय साहित्यिक सज्जन—कृतविद्य कवि-कोविद कर रहे होंगे । श्रीमान् का दिया हुआ यह धन मैं श्रीमान् के ही नाम से—वसंत-पंचमी‡ के शुभ दिन को अमर करने के लिये—नवीन और प्राचीन

❀ पाठांतर सेइ ।

† पाठांतर लेइ ।

‡ वसंत-पंचमी के ही दिन मेरा जन्म हुआ, मेरी प्यारी गंगा-पुस्तकमाला का और गंगा-फ़ाइनआर्ट-प्रेस का जन्म भी उसी दिन हुआ, तथा वसंत-पंचमी को ही मैं उस स्वर्गीय आत्मा से भी एक किया गया था, जिसके नाम से मैं गंगा-पुस्तकमाला को गूँथ रहा हूँ ।

काव्य-पुस्तकों के प्रकाशन में लगाना चाहता हूँ। पुस्तक-रूप में इतनी ही संपत्ति मैं अपनी ओर से भी इसमें सम्मिलित करके एक पुस्तक-माला 'देव-सुकवि-सुधा' नाम से, ४,०००) के मूल-धन से, प्रकाशित करूँगा। देव-पुरस्कार की रक़म से जो माला चलाई जाय, उसमें देव-शब्द संयुक्त होना तो ठीक है ही, सुधा-शब्द भी स्पष्ट कारणों से समीचीन है। आशा है, सहृदय साहित्य-संसार को भी यह नाम बहुत सार्थक—समुचित समझ पड़ेगा। अस्तु। इस पुस्तकावली का प्रबंध एक परिषद् द्वारा होगा, जिसमें अनेक सदस्य रहेंगे। इनका निर्वाचन बाद में हो जायगा। मेरी इच्छा है कि श्रीमान् सवाई महेंद्र महाराजा साहब स्वयं इसके सभापति रहें, और मैं मंत्री के रूप में सेवा करूँ। आशा है, श्रीमान् मेरी यह सांजलि समभ्यर्थना स्वीकार करके मुझे इस संपत्ति को इस शुभ कार्य में लगाने का आदेश देंगे। समिति को या मुझे अधिकार होगा कि किसी सुप्रसिद्ध साहित्यिक संस्था को यह सारी संपत्ति, जब समुचित समझे, समर्पित कर दे।

टीकमगढ़
वसंत-पंचमी, १९९१ } दुलारेलाल भार्गव

शुद्धि-पत्र

कृपया शुद्ध करके ही ग्रंथ पढ़िए, क्योंकि प्रत्येक शब्द पर विचार करने ही से पूर्ण स्वाद मिल सकेगा।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१६	७	बार	बोर
३०	६	ज्यों	क्यों
३०	६	वग़ारा	वग़ैरा
३५	५	दे अदेव	देव अदेव
३६	१८	केखा	केखी
५३	८	नाल	नोल
५७	१२	बाच	नाचे
६७	१३	मिली	मिलीं
७१	६	खज़न	खजन
८०	१२	छंद के	छंद को
८६	१८	मूदिता	मुदिता
८८	६	परमानद को परमानँद	परमानँद को परमानद
९६	११	निरतन	निरतत
१२३	१२	काई	कोई
१२३	१८	लगाइए	लगाए
१२५	१६	चित्र	चित्त
१२८	३	देख	देखे
१२६	१८	हेमत	हेमंत

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१२६	१६	काँपन	काँपने
१३२	४	सफरा	सफरी
१३२	११	चनगारे	चिनगारे
१४४	६	मारनि	मोरनि
१४८	२२	मेरा	मेरी
१५३	१२	इला = हिदा	इलाहिदा
१६०	१	चन	पंचन